शैक्षिक मंथन

(द्विभाषी मासिक)

शैक्षिक क्षेत्र की प्रतिनिधि पत्रिका

वर्ष : 11 अंक : 2 1 सितम्बर 2018

(भाद्रपद, विक्रम संवत् 2075)

संस्थापक
स्व. मुकुन्दराव कुलकर्णी

❖

परामर्श
के.नरहरि
डॉ. विमल प्रसाद अग्रवाल
जगदीश प्रसाद सिंघल

❖

सम्पादक
सन्तोष पाण्डेय

❖

सह सम्पादक
विष्णुप्रसाद चतुर्वेदी ❑ भरत शर्मा

❖

संपादक मंडल
प्रो. नन्दकिशोर पाण्डेय
डॉ. एस.पी. सिंह
डॉ. ओमप्रकाश पारीक
डॉ. शिवशरण कौशिक

❖

प्रबन्ध सम्पादक
महेन्द्र कपूर

❖

व्यवस्थापक
बजरंग प्रसाद मजेजी

प्रेषण प्रभारी
बसन्त जिन्दल ❑ नौरंग सहाय भारतीय
कार्यालय प्रभारी
आलोक चतुर्वेदी : 9782873467

प्रकाशकीय कार्यालय
82, पटेल कॉलोनी, सरदार पटेल मार्ग,
जयपुर (राज.) 302001
दूरभाष : 9414040403

दिल्ली ब्यूरो :
शैक्षिक महासंघ सदन, 606/13,
कृष्णा गली नं.9, मौजपुर, दिल्ली-110053
दूरभाष : 011-22914799

E-mail :
shaikshikmanthan@gmail.com
Visit us at :
www.shaikshikmanthan.com

एक प्रति 20/- वार्षिक शुल्क 200/-
आजीवन (दस वर्ष) 1500/-

पृष्ठ संयोजन : सागर कम्प्यूटर, जयपुर

शैक्षिक मंथन मासिक में प्रकाशित सामग्री से संपादक मण्डल का सहमत होना आवश्यक नहीं है तथा चित्रों का प्रतीकात्मक प्रयोग किया गया है।

शिक्षा जगत के प्रकाश पुंज : डॉ. राधाकृष्णन ❑ डॉ. बुद्धमति यादव

9

भारतीय संस्कृति में समर्पित गुरु और समर्पित शिष्य की यह स्वस्थ परम्परा वैदिक काल से वर्तमान काल तक अजस्त्र धारा के रूप में प्रवाहित है। काल के विकास-क्रम से उसमें धीरे-धीरे अनेक विकृतियाँ आ गई हैं। शिक्षा का वास्तविक अर्थ, कोरे पुस्तकीय ज्ञान तक सीमित हो गया है, जिससे विद्यालय 'यंत्रालय' बन गये हैं, जहाँ मानव यंत्रों का निर्माण हो रहा है, मनुष्यों का निर्माण नहीं। इसलिए आज शिक्षकों की पूर्ववत गरिमा को नकारा जाने लगा है। आज शिक्षा, शिक्षक और शिक्षार्थी की जो दिशा और दशा है उससे कैसे समाज निर्माण की कल्पना की जा सकती है ? आज समस्त अवधारणाएँ बदल गई हैं। शिक्षा का उद्देश्य ज्ञानार्जन से अधिक अर्थार्जन हो गया है।

अनुक्रम

4.	शिक्षकत्व ही शिक्षक सम्मान	- सन्तोष पाण्डेय
6.	अटल राष्ट्र आराधक	- सुरेन्द्र चतुर्वेदी
11.	शिक्षक दिवस की सार्थकता	- डॉ. प्रकाश चंद्र अग्रवाल
13.	पुरस्कृत शिक्षकों से राष्ट्र की अपेक्षा	- बजरंग प्रसाद मजेजी
15.	शिक्षक और पेशेवर नैतिकता	- डॉ. रेखा यादव
17.	गुरु सम्मान के आचरणीय निहितार्थ	- डॉ. ओमप्रकाश पारीक
19.	डॉ. राधाकृष्णन् का शैक्षिक दर्शन	- प्रो. मधुर मोहन रंगा
21.	वर्तमान शिक्षा-व्यवस्था और शिक्षक	- सुमनबाला
24.	शिक्षक, शिक्षण और सम्मान	- डॉ. ओम प्रभात अग्रवाल
26.	Dr. S. Radhakrishnan : At a Glance	- Dr. T. S. Girishkumar
31.	वर्तमान शिक्षा व्यवस्था का पुनर्मंथन	- डॉ. ऋतु सारस्वत
33.	भाषाई संगम का सुनहरा सपना	- अनंत विजय
35.	उच्च शिक्षा के सामने यक्ष प्रश्न	- जगमोहन सिंह राजपूत
37.	गिरती गुणवत्ता के पीछे	- रमेश दवे
39.	उच्च शिक्षा में चुनौतियाँ	- प्रो. सतीश कुमार
41.	रोचक बने गणित की गुत्थी	- अभिषेक कुमार सिंह
43.	विद्या भगीरथ - सोनम वांगचुक	- विष्णुप्रसाद चतुर्वेदी
45.	अवतार कथा-2 (कुटुम्ब प्रबोधन-छठा अध्याय)	- हनुमान सिंह राठौड़
48.	गतिविधि	

Role of Teachers in Quality Education

❑ Dr. Anita Modi

The quality of education depends on the very fact how successfully and efficiently the teachers perform their noble profession and how sincerely students do their studies.For quality education, it is essential that teachers need to be highly competent with commitment, devoted and dedicated to their duty. They create opportunities for students to learn, to know, to creatively think, to act and to grow. The teachers inspire students, instil human values in them and discipline their spirits to ensure the quality of higher education.

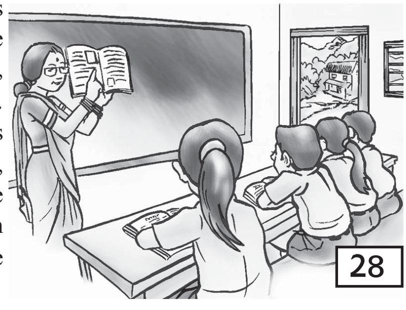

28

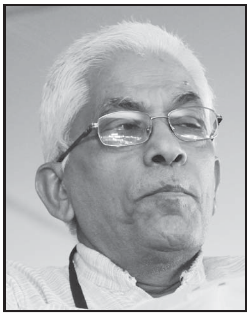

शिक्षा का उद्देश्य व शिक्षक का दृष्टिकोण बदला है। शिक्षा, प्राथमिक होते हुए भी शिक्षक दोयम हो गया है। शिक्षा नवज्ञान सृजनकर्ता के स्थान पर सूचनाओं को व्यापक रूप से प्रसारित करने का केन्द्र बन गयी। तकनीकी विकास ने शिक्षक की भूमिका को कमतर बनाया है। व्यापक रूप से शिक्षक वर्ग भी इसे एक सेवा या मिशन के स्थान पर आजीविका स्त्रोत मानने लगा है। वैयक्तिक व भौतिक लाभ के लिये वह किसी भी सीमा तक किसी भी दिशा में जा सकता है। शिक्षण व्यवसाय भी ऐसा बन गया है, जिसे व्यक्ति कोई अन्य रोजगार नहीं मिलने पर ही अपनाता है और कोई भी अन्य विकल्प मिलने पर इसे त्याग देता है। ऐसे में समर्पित वास्तविक शिक्षक कैसे मिलें यह एक बड़ी समस्या है।

शिक्षकत्व ही शिक्षक सम्मान

❑ सन्तोष पाण्डेय

संपादकीय

प्राचीन काल से ही सांस्कृतिक परम्पराओं से परिपूर्ण भारत में सितम्बर माह का विशेष स्थान है। इसी माह में सदैव से सर्वाधिक सम्मानित गुरुजनों के सम्मानार्थ 5 सितम्बर भारतीय दार्शनिक, मनीषी व श्रेष्ठ शिक्षक डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन का जन्मदिवस है, को 'शिक्षक दिवस' के रूप में मनाया जाता है। 14 सितम्बर को भारतीय संस्कृति को भागीरथी स्वरूप प्रदान करने वाली भारतीय भाषाओं के अक्षुण्ण बनाये रखने हेतु 'भारतीय भाषा दिवस' जिसे प्रायः जन साधारण हिन्दी दिवस के रूप में पहचानता है, मनाया जाता है। आज विश्वभर में बड़ी संख्या में अनेक दिवस मनाये जाते हैं, जिनसे इनके वास्तविक महत्त्व व उद्देश्य में ह्रास का आभास होता है। भारत में भी गत अनेक दशकों में व्यापक परिवर्तन हुये हैं। भारतीय समाज भौतिकता से परिपूर्ण वैश्विक संस्कृति के प्रभाव में आता जा रहा है, जो इस समीक्षा को अपरिहार्य बनाती है कि कहीं शिक्षक दिवस व हिन्दी दिवस को मनाना औपचारिकता का निर्वाह भर तो नहीं है।

भारत में वेदोपनिषद् काल से ही समाज ने शिक्षक जिसे आज गुरु का समानार्थक माना जाता है, को सर्वोच्च सम्मान सदैव से दिया है। आज भी जनसाधारण शिक्षक को अपने बच्चों के जीवन निर्माता के रूप में सम्मान देता है जिससे शिक्षक बनना एक अति सम्मानित जीवन का ध्येय रहा है। स्वतंत्रता से पूर्व के व्यापक जन-जागरण में शिक्षकों की महती भूमिका रही है। शिक्षक ने गरीबी, अज्ञानता, विपरीत राजनीतिक परिस्थितियों में भी ग्रामीण भारत को नैतिक बल प्रदान करते हुये स्थानीय राजनीतिक-सामाजिक नेतृत्त्व प्रदान किया व परिवर्तन में प्रभावी भूमिका निभाई। भारत में शिक्षक सभी कालखण्डों में सर्वाधिक सम्मान का पात्र रहा है। शिक्षक का यह सम्मान एक शिक्षक का नहीं वरन शिक्षक के अन्तर्मन में बसे 'शिक्षकत्व' का था। 'शिक्षकत्व' या शिक्षकतत्त्व निष्ठा, ईमानदारी, सहृदयता, कर्तव्यपरायणता, विद्यार्थी के प्रति पुत्रवत् स्नेह, सहयोग की भावना, श्रेष्ठ जीवन मूल्यों की स्थापना व परिपालन में योग, अन्याय के प्रतिकार, सत्य की प्रतिष्ठा के लिये दृढ़ता, नकारात्मक प्रवृत्तियों के परिहरण, रचनात्मक दृष्टिकोण से युक्त दृढ़ आशावादिता से निर्मित होता है। इस तत्त्व से युक्त व्यक्ति ही शिक्षक के रूप में प्रतिष्ठित होता है। इन्हीं गुणों के कारण ही भारत में प्राचीन काल से ही शिक्षण कार्य एक अति सम्माननीय रहा है। उपर्युक्त गुणों को अपने व्यक्तित्व में समाहित करके ही एक व्यक्ति सही रूप में शिक्षक का जीवन जीता है। अनवरत अध्ययन, अध्यापन, शोध व जीवन पर्यन्त नया सीखने की तत्परता एक शिक्षक के जीवन का अभिन्न अंग होता है। आज का शिक्षक इन मानदण्डों पर जिस सीमा तक खरा उतरता है,

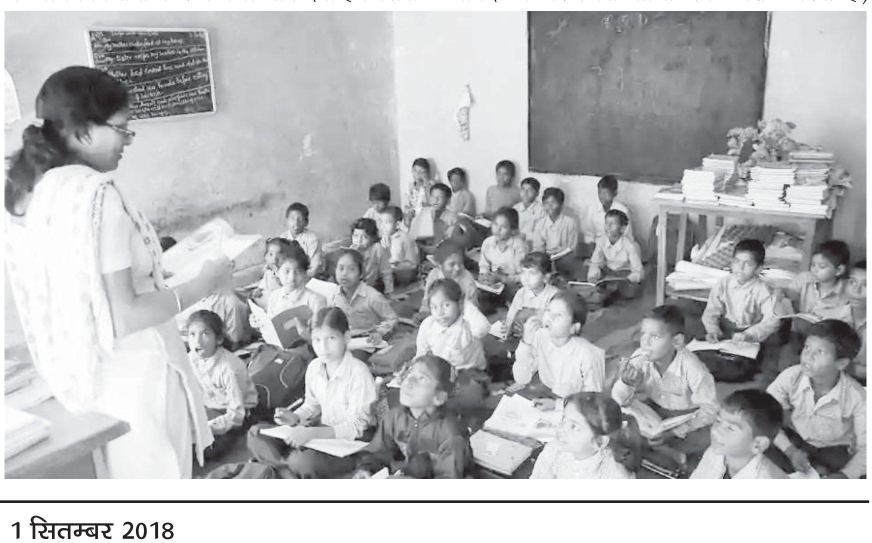

उसी सीमा तक वह समाज में सम्मान का पात्र बन सकता है। स्मरण रहे सम्मान कभी भी माँगा नहीं जाता, वरन् सम्मान का पात्र बनना होता है।

21वीं सदी के भारत में व्यापक परिवर्तन हो रहे हैं। संपूर्ण विश्व एकाकार हो रहा है। वैश्वीकरण, उदारीकरण व निजीकरण आज वैश्विक नीति है। व्यक्तिगत हित साधन व भौतिकतावादी दृष्टिकोण समाज में प्रतिष्ठित हो रहा है, भारत में शिक्षा के व्यापक प्रचार-प्रसार, विविधीकरण व व्यापकता से शिक्षक व शिक्षण प्रभावित हुआ है। भारत में सदियों से चली आ रही 'गुरुकुल' व्यवस्था का स्थान व्यापक शिक्षा व्यवस्था व प्रशासन ने ले लिया है जो शिक्षक के स्थान पर शिक्षा का केन्द्र बिन्दु (Hub) बन चुका है। अनेक अन्य प्रतियोगी व आकर्षण से परिपूर्ण व्यवसायों, प्रोफेशनों व वोकेशनों के चलन ने शिक्षण की चमक धुँधली की है। वास्तव में यह तय करना कठिन है कि शिक्षण कार्य आजीविका प्राप्ति का साधन है, या व्यवसाय या जीवन का ध्येय एक मिशन है। भारतीय संस्कृति में तो 'शिक्षा' को सर्वोत्तम सेवा माना गया है। विद्यादान को सर्वोत्तम दान माना गया है, जिसका व्यावसायिकता अथवा लाभ-हानि से दूर-दूर का संबंध नहीं है। शिक्षा राष्ट्र का निर्माण करती है, चरित्र का निर्माण करती है, संपूर्ण मानव बनाती है, संस्कृति को प्रवहमान बनाये रखती है। यह एक व्यवसाय कदापि नहीं होनी चाहिये। आज की वैश्विक संस्कृति का प्रभाव है कि यह व्यवसाय व लाभदायक उद्योग में परिवर्तित हो चुकी है। शिक्षक वर्ग इन परिवर्तनों से व्यापक रूप से प्रभावित हुआ है। शिक्षा का उद्देश्य व शिक्षक का दृष्टिकोण बदला है। शिक्षा, प्राथमिक होते हुए भी शिक्षक दोयम हो गया है। शिक्षा नवज्ञान सृजनकर्ता के स्थान पर सूचनाओं को व्यापक रूप से प्रसारित करने का केन्द्र बन गयी। तकनीकी विकास ने शिक्षक की भूमिका को कमतर बनाया है। व्यापक रूप से शिक्षक वर्ग भी इसे एक सेवा या मिशन के स्थान पर आजीविका स्रोत मानने लगा है। वैयक्तिक व भौतिक लाभ के लिये वह किसी भी सीमा तक किसी भी दिशा में जा सकता है। शिक्षण व्यवसाय भी ऐसा बन गया है, जिसे व्यक्ति कोई अन्य रोजगार नहीं मिलने पर ही अपनाता है और कोई भी अन्य विकल्प मिलने पर इसे त्याग देता है। ऐसे में समर्पित वास्तविक शिक्षक कैसे मिलें, यह एक बड़ी समस्या है। गुरुकुल व्यवस्था में छात्र अपने जीवन का बड़ा भाग गुरु के सान्निध्य में बिताता था, सीखता था। परन्तु आज यह स्थिति नहीं है, शिक्षक व विद्यार्थी का सम्पर्क बहुत ही औपचारिक व कुछ कालांशों तक सीमित हो चुका है। शिक्षक मात्र पाठ्यक्रम ही पूरा करा सकता है, विद्यार्थी पर अमिट छाप नहीं छोड़ सकता है। इससे समाज में शिक्षक की भूमिका घटी है व उसी अनुपात में सम्मान में भी गिरावट आई है। शिक्षक सम्मान में सर्वाधिक गिरावट निरन्तर घटती हुई कार्यसंस्कृति के कारण आई है। कर्तव्य परायणता व प्रतिबद्धता में शिथिलता ने ही शिक्षक सम्मान को चोट नहीं पहुँचाई है वरन् कोचिंग व टयूशन के लिये विद्यार्थी पर अनुचित दबाव, परीक्षा व मूल्यांकन में बढ़ते कदाचार व येन-केन-प्रकारेण कागजी उपाधि प्राप्त करने की जोड़-तोड़ में लिप्तता ने भी शिक्षक सम्मान को भारी चोट पहुँचाई है, शिक्षा को एक व्यवसाय या पेशा मानने पर भी कुछ पेशेवर विशिष्टताएँ, योग्यताएँ व व्यवहार के मानदण्ड अपनाने होते हैं। शिक्षक प्रशिक्षण के भारी प्रयासों के बावजूद स्थिति में परिवर्तन नहीं आ सका। शिक्षक के लिये आचरण मानदण्ड (Code of conduct) निर्धरित होने के बावजूद उनकी व्यापक स्वीकार्यता एवं अनुकरण अपेक्षित है। यह भी सत्य है कि शिक्षक के कर्तव्य पालन में अनेक बाधाएँ हैं। जिन्हें दृढ़ निश्चयी, शिक्षा को एक मिशन मानने वाला शिक्षक ही दूर कर शिक्षण को सफल व उद्देश्यपूर्ण बना सकता है। ऐसे गुणों से युक्त शिक्षक आज भी सम्मान के पात्र बनते हैं। भारत की आज की अतिविशाल विविधतापूर्ण शिक्षा व्यवस्था में शिक्षक शिक्षा का केन्द्र नहीं है, वरन एक छोटे पुर्जे के समान है जिसके अनेक असली-नकली विकल्प उपलब्ध हैं। शिक्षकों की कार्य संस्कृति को सुधारने में शिक्षक संगठन महती भूमिका निभा सकते हैं। परन्तु साम्यवादी-समाजवादी विचार व प्रभाव के विस्तार हेतु शिक्षक संगठनों ने मात्र वेतन-भत्तों, सेवा शर्तों व सुविधाओं के विस्तार पर बल दिया। शिक्षक असन्तोष को बढ़ावा दिया। इससे सुविधाएँ तो बढ़ी, परन्तु शनै-शनै तिरोहित होती कार्य-संस्कृति को बचाने के प्रयास नहीं हुए। इससे समाज में शिक्षक की नकारात्मक छवि निर्मित हुई कतिपय संगठन जो शिक्षा को मिशन व शिक्षक को मानव निर्माता मानते हैं, इस छवि को तोड़ने के लिये आगे आये हैं। राष्ट्र के लिये शिक्षा, शिक्षा के लिये शिक्षक व शिक्षक के लिये समाज का ध्येय सामने रख शिक्षकों में कर्तव्य बोध की अलख जगा रहे हैं। परन्तु क्या इतना ही पर्याप्त है, इस पर गंभीर चिन्तन-मनन आवश्यक है।

इससे यह सार निकालना भी उपयुक्त नहीं होगा कि भारत की शिक्षा में सभी कुछ ठीक नहीं है। वास्तव में आज भी ऐसे शिक्षक व शिक्षण संस्थाएँ बड़ी संख्या में विद्यमान हैं, जो शिक्षा के माध्यम से मनुष्य निर्माण व चरित्र निर्माण के पवित्र कार्य में समर्पित किए हुये हैं? वे आज भी समाज में सम्मान की निगाहों से देखे जाते हैं। ऐसे शिक्षकों को चिन्हित कर सार्वजनिक रूप से सम्मानित कर समाज के समक्ष प्रेरणा के प्रतीक के रूप में स्थापित करने की अपेक्षा है। 'शिक्षक दिवस' इसी आवश्यकता की पूर्ति करता है। परन्तु समाज व शिक्षा की शिक्षक को सम्मानित करने की अपेक्षा मात्र प्रतीक चिह्नों से पूर्ण नहीं होगी। यदि आज शिक्षक को 'गुरु' का सम्मान प्राप्त करना है, तो प्रत्येक शिक्षक को अपने अन्दर शिक्षकत्व को पनपाना होगा। 'मनसा वाचा, कर्मणा' में उसे परिवर्तित करना होगा, तब ही शिक्षक अपेक्षित सम्मान का पात्र बन सकेगा। ❑

1957 में भारतीय जनसंघ के चार सांसद चुने गए। जब उन सांसदों का परिचय तत्कालीन राष्ट्रपति एस राधाकृष्णन से कराया गया और उन्हें बताया गया कि ये भारतीय जनसंघ के सांसद हैं तो उन्होंने हैरानी जताते हुए उन्होंने कभी इस दल के बारे में नहीं सुना! अटल बिहारी वाजपेयी उन चार सांसदों में से एक थे। यह घटना इसलिए उल्लेखनीय है कि पाठक इस बात को समझ सकें कि भारतीय राजनीतिज्ञ जनसंघ के बारे में क्या सोचते थे। उनके लिए भारतीय जनसंघ एक गैरमामूली सा नकारा जाने लायक राजनीतिक दल था। लेकिन इसी दल के अटल बिहारी वाजपेयी ने संसद में अपने पहले ही कार्यकाल में ऐसी छाप छोड़ी कि तत्कालीन प्रधानमंत्री जवाहर लाल नेहरू तक यह कह गए कि ये युवा सांसद एक दिन भारत का प्रधानमंत्री बनेगा।

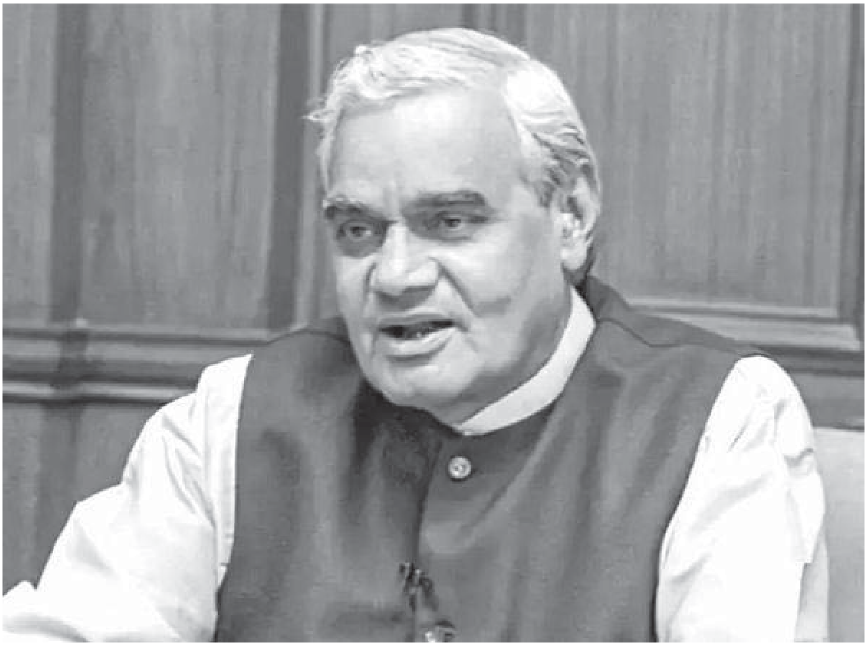

अटल राष्ट्र आराधक

❑ **सुरेन्द्र चतुर्वेदी**

अटल जी !! इस नाम का विचार आते ही बरबस एक चेहरा सबके सामने उभर आता है, यही कमाया उन्होंने अपनी पूरी जिंदगी में। एक ऐसे राजनेता जो भारत के लिए, भारतीयता के लिए जिये और अपने अंत समय में दो मिसाल समाज के लिए छोड़ गये। पहली राजनीति से भी संन्यास लिया जा सकता है, और दूसरी यदि आपकी शख्सियत बेमिसाल हो, तो बरसों लोगों से ना मिल पाने और राजनीतिक घटनाक्रम से दूर होने के बावजूद आप लाखों दिलों में अपना स्थान बनाये रख सकते हो।

भारत का पहला नेता जो कभी कांग्रेस में नहीं रहा। अटल बिहारी वाजपेयी से पहले भारत में जो भी गैर कांग्रेसी प्रधानमंत्री बने वे कभी ना कभी कांग्रेस में रहे थे, और कांग्रेस नेतृत्व का विरोध करते हुए कांग्रेस से अलग हुए और भारत के प्रधान मंत्री बने। लेकिन अटल जी पहले ऐसे राजनेता थे, जो कभी कांग्रेस में नहीं रहे।

25 दिसम्बर 1924 को पंडित कृष्ण बिहारी वाजपेयी के घर जन्म लेने वाले अटल जी को कविता लेखन और पाठन पैतृक रूप से मिला था या यूँ भी कह सकते हैं कि कविता उनके गुणसूत्र (डीएनए) में थी। एक बार वरिष्ठ पत्रकार तवलीन सिंह ने जब उनकी वक्तृत्व कला की तारीफ की तो अटल जी ने हँसते हुए कहा कि मैं कहाँ अच्छा भाषण देता हूँ, मेरे पिता को सुनने के लिए तो दूर-दूर से लोग आते थे। यह विनम्रता आज के परिवेश में दूर की बात लगती है।

लड़कपन में ही संघ के संपर्क में आ गये थे। कविताएँ सुनाते हुए और महाविद्यालय में वाद-विवाद प्रतियोगिताओं में भाग लेते-लेते वो कब सरस्वती पुत्र हो गए, इसका अंदाजा उन्हें खुद नहीं था। वे मनमस्त फकीर थे। सिर्फ एक ही धुन जय जय भारत। महात्मा गाँधी की हत्या के बाद राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ से जुड़े स्वयंसेवकों ने 'राष्ट्रधर्म' का लखनऊ से प्रकाशन शुरू किया तो अटल बिहारी वाजपेयी को उसका प्रथम संपादक बनाया। कुछ ही समय बाद जब राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ ने अपने स्वयंसेवकों को अपने विचार और अपने से जुड़े समाचारों की सही जानकारी देने के लिए राष्ट्रीय साप्ताहिक 'पाञ्चजन्य' का प्रकाशन शुरू किया तो अटलजी को प्रथम संपादक के चुनौतीपूर्ण कार्य के लिए लखनऊ से दिल्ली बुला

लिया, उसके बाद तब से जो अटल जी दिल्ली आए वो वहीं के होकर रह गये। कभी ना तो ग्वालियर जा पाये और ना ही लखनऊ। उनके बालमित्र बताते हैं कि जब कभी साल दो साल में अटल जी ग्वालियर आते तो अपने मित्रों को ढूँढ़कर बुलवाते और परिवार की जानकारी भी लेते।

भारत के प्रथम प्रधानमंत्री जवाहर लाल नेहरू से मतभेदों के चलते देश के प्रथम उद्योग मंत्री श्यामा प्रसाद मुखर्जी ने ना केवल मंत्री पद से इस्तीफा दे दिया, बल्कि कांग्रेस को भी छोड़ दिया। अपने राष्ट्रवादी विचारों को नेहरू द्वारा लगातार नकारे जाने के कारण मुखर्जी एक राजनीतिक विकल्प को खड़ा करने में जुट गये और 21 अक्टूबर 1951 को भारतीय जनसंघ के नाम से एक नई राजनीतिक पार्टी का जन्म हुआ। अटल बिहारी वाजपेयी जनसंघ के संस्थापक सदस्यों में से एक थे। जनसंघ का काम बढ़ रहा था, तब उन्हें एक सहायक की जरूरत थी। तब जनसंघ के महामंत्री पंडित दीनदयाल उपाध्याय ने अटल जी को उनके सहायक के रूप में साथ कर दिया और इस प्रकार कवि से पत्रकार होते हुए वे सक्रिय राजनीति में आ गये। बहुत कम लोग इस बात को सोचते होंगे कि मात्र 27 वर्ष की उम्र होते-होते अटलजी दो प्रमुख प्रकाशनों के संपादक रह चुके थे। ओजस्वी कवि के रूप में उनकी मान्यता बढ़ने लगी थी और वे राजनीति के केन्द्र बिन्दु में अपनी जगह बना रहे थे।

श्यामा प्रसाद मुखर्जी की संदेहास्पद मृत्यु के बाद अटल जी सिर्फ जनसंघ के ही होकर रह गए। उस समय जनसंघ को केवल राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ से जुड़े लोगों का ही समर्थन प्राप्त था। नेहरू लहर में यह कल्पना भी नहीं की जा सकती थी कि कोई राजनीतिक दल कांग्रेस के विकल्प के रूप में सामने आएगा। आज जो लोग भारतीय जनता पार्टी के व्यापक स्वरूप को देखते हैं, यदि वो अतीत में झाँकें तो पाएंगे कि वह कितना मुश्किल दौर था, जब आपको देश में मुट्ठी भर लोग ही जानते हैं और आप राजनीतिक विकल्प की बातें करते हैं।

अटल जी और दीनदयाल जी की जोड़ी ने देश भर में निरंतर प्रवास शुरू कर दिये थे। थका देने वाले प्रवास लेकिन मन में यह दृढ़ विश्वास था कि हम कांग्रेस का विकल्प बनेंगे तो उसी धुन में अपनी राजनीतिक यात्रा जारी रखे हुए थे। 1957 में भारतीय जनसंघ के चार सांसद चुने गए। जब उन सांसदों का परिचय तत्कालीन राष्ट्रपति एस राधाकृष्णन से कराया गया और उन्हें बताया गया कि ये भारतीय जनसंघ के सांसद हैं तो उन्होंने हैरानी जताते हुए उन्होंने कभी इस दल के बारे में नहीं सुना! अटल बिहारी वाजपेयी उन चार सांसदों में से एक थे। यह घटना इसलिए उल्लेखनीय है कि पाठक इस बात को समझ सकें कि भारतीय राजनीतिज्ञ जनसंघ के बारे में क्या सोचते थे। उनके लिए भारतीय जनसंघ एक गैरमामूली सा नकारा जाने लायक राजनीतिक दल था। लेकिन इसी दल के अटल बिहारी वाजपेयी ने संसद में अपने पहले ही कार्यकाल में ऐसी छाप छोड़ी कि तत्कालीन प्रधानमंत्री जवाहर लाल नेहरू तक यह कह गए कि ये युवा सांसद एक दिन भारत का प्रधानमंत्री बनेगा।

अपने आप में विश्वास और अपने विचार के लिए समर्पण अटल जी की वह खूबी थी, जिसने उन्हें नेता से जननेता बना दिया। उनकी भाषण शैली और भाषण में ली जाने वाली चुटकियाँ ना केवल लोगों को सोचने पर मजबूर करती थी अपितु विपक्ष यानि कांग्रेस पर करारा वार करती थी। 25 जून 1975 की मध्य रात्रि को तत्कालीन प्रधानमंत्री श्रीमति इंदिरा गाँधी ने देश में आपातकाल लगा दिया। देश के सभी प्रमुख नेता जेल में ड़ाल दिये गए। तब ऐसा लगता ही नहीं था, कि कभी ये लोग जेलों से बाहर भी आ पाएँगे। तब इंदिरा गाँधी सरकार के अत्याचारों का विरोध करते हुए अटलजी ने जेल में एक कविता लिखी, जो उनके दृढ़ संकल्प को दर्शाती थी। आप भी पढ़िये ।

टूट सकते हैं मगर हम झुक नहीं सकते।
सत्य का संघर्ष सत्ता से,
न्याय लड़ता निरंकुशता से,
अँधेरे ने दी चुनौती है,
किरण अन्तिम अस्त होती है।
दीप निष्ठा का लिए निष्कम्प
वज्र टूटे या उठे भूकम्प,
यह बराबर का नहीं है युद्ध,
हम निहत्थे, शत्रु है सन्नद्ध,
हर तरह के शस्त्र से है सज्ज,
और पशुबल हो उठा निर्लज्ज।
किन्तु फिर भी जूझने का प्रण,
पुनरू अंगद ने बढ़ाया चरण,
प्राण-पण से करेंगे प्रतिकार,
समर्पण की माँग अस्वीकार।
दाँव पर सब कुछ लगा है,
रुक नहीं सकतेय
टूट सकते हैं मगर हम झुक नहीं सकते।

यह संकल्प उन लाखों कार्यकर्ताओं के लिए संजीवनी साबित हुआ जो जनसंघ को कांग्रेस का विकल्प बनते देखना चाहते थे। 1977 में आपातकाल हटने के बाद परिवर्तन की विशाल आँधी चली और जनता ने इंदिरा गाँधी को हटा कर वाम पंथी दलों के अलावा सभी दलों को मिलाकर बनाये गए जनता पार्टी को सत्ता सौंप दी और मोरारजी देसाई देश के प्रधानमंत्री बने, और अटल जी को देश का विदेश मंत्री बनाया गया। विदेश मंत्री के रूप में उन्होंने संयुक्त राष्ट्र महासंघ में अपनी मातृभाषा में यानि हिन्दी में भाषण दिया। उन पर हिंदी में भाषण ना देने के लिए काफी दबाव था लेकिन वे झुके नहीं। उन्होंने कह दिया कि हिन्दी में ही भाषण दूँगा या फिर बिना भाषण के वापस जाऊँगा। अंततः उनके संकल्प के आगे महासंघ को झुकना पड़ा और अटल जी ने अपना भाषण हिन्दी में दिया। यह पहला अवसर था जब अटल जी ने देश के जनमानस को बताया कि वो राजनीति करने के लिए नहीं अपितु भारत का मान बढ़ाने के लिए राजनीति में हैं। लेकिन आपसी झगड़े के कारण यह सरकार ढ़ाई साल ही चल पाई और

फिर हुए चुनावों में सत्ता वापस इंदिरा गाँधी के हाथों में थी।

इसी बीच जनता पार्टी में एक विवाद शुरू हो गया कि जो नेता राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ से जुड़े हैं, वे या तो संघ की सदस्यता का त्याग करें या जनता पार्टी को छोड़ दें। दोहरी सदस्यता के सवाल पर अटल बिहारी के नेतृत्व में लाल कृष्ण आडवाणी, भैंरोसिंह शेखावत सहित सैकड़ों नेताओं ने जनता पार्टी को छोड़ दिया और 6 अप्रेल 1980 को मुंबई में भारतीय जनता पार्टी की स्थापना की गई। एक तरह से जहाँ से शुरू हुए थे वापस वहीं पहुँच गए थे। केवल राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ और भारतीय जनता पार्टी। लेकिन तब तक एक बात जरूर हो चुकी थी कि भाजपा के नेता सरकार में मुख्यमंत्री और केन्द्रीय सरकार में मंत्री रह चुके थे और समर्थक पहले की तुलना काफी बढ़ गये थे। भाजपा को अभी भी कांग्रेस का विकल्प नहीं माना जाता था। हाँ, कुछ जगह उसका प्रभाव जरूर था। 1984 के आम चुनावों में भाजपा को एक बड़े दल के रूप में देखने को देश तैयार था, लेकिन दुर्भाग्य से प्रधानमंत्री इंदिरा गाँधी की हत्या हो गई। कांग्रेस के विरोध में जो वातावरण बना था, वह सहानुभूति की लहर में धुल गया और भाजपा को मात्र दो सीटें ही मिलीं।

ये सब बातें इसलिए लिख रहा हूँ कि हम अटल जी की मन स्थिति को समझ सकें। इतनी मेहनत के बाद जब सब तरफ निराशा उत्पन्न हो रही थी। अटल जी के पास खुद के निराश होने का समय नहीं था, उन्हें कार्यकर्ताओं में उत्साह का संचार करना था। तब उन्होंने लिखा.....

कभी थे अकेले हुए आज इतने
नही तब डरे तो भला अब डरेंगे
विरोधों के सागर में चट्टान है हम
जो टकराएंगे मौत अपनी मरेंगे
लिया हाथ में ध्वज कभी न झुकेगा
कदम बढ रहा है कभी न रुकेगा
न सूरज के सम्मुख अंधेरा टिकेगा
निडर है सभी हम अमर है सभी हम
के सर पर हमारे वरदहस्त करता
गगन में लहरता है भगवा हमारा

कहना होगा कि अटल जी के ये कविताएँ ना केवल उनको खुद को उर्जावान बनाती थीं, अपितु कार्यकर्ताओं में असीम उर्जा का संचार करती थीं। अटल जी भाजपा की कमियों को समझते थे, इसलिए उन्होंने 1989 में जनता दल के साथ चुनाव पूर्व गठबंधन किया और भाजपा और जनता दल ने मिलकर चुनाव लड़ा, जिसके कारण राजीव गाँधी सत्ता से बाहर हो गए और विश्वनाथ प्रताप सिंह भारत के प्रधानमंत्री बने। भाजपा ने सत्ता के बाहर से समर्थन देने का फैसला किया। लेकिन जनता दल जनादेश का सम्मान नहीं कर पाया और चौधरी देवी लाल से विरोध के कारण वह सरकार भी गिर गई। राजनीतिक अस्थिरता के इस वातावरण में भारत ने एच. डी. देवगौड़ा, इन्द्रकुमार गुजराल और चंद्रशेखर को भी अल्पकालीन प्रधानमंत्री के रूप में देखा।

छह माह में ही राजीव गाँधी द्वारा चंद्रशेखर सरकार पर उनकी जासूसी का आरोप लगाकर सरकार गिरा देने के कारण देश फिर चुनावों की दहलीज पर था। इस बार भी भारतीय जनता पार्टी लोगों की आशा की किरण थी लेकिन 21 मई 1991 को राजीव गांधी की हत्या ने देश का माहौल फिर बदल दिया। राजीव की हत्या ने भाजपा को सत्ता से फिर दूर कर दिया, लेकिन कांग्रेस को भी पूर्ण बहुमत नहीं मिला था। इस कारण गाँधी परिवार से अलग कांग्रेस के वरिष्ठ नेता नरसिंह्मा राव देश के प्रधानमंत्री के रूप में सामने आए।

नरसिंह्मा राव अटल जी से इतने प्रभावित थे कि उन्होंने अटल जी के नेतृत्व में एक प्रतिनिधि मण्डल संयुक्त राष्ट्र महासभा में भेजा था। जिस पर कांग्रेस के लोगों ने सवाल उठाये तो उन्होंने अटल जी को भारत का प्रतिनिधित्व करने वाला राजनेता बताया। यह घटनाएँ इसलिए महत्त्वपूर्ण हैं जिससे हम अटल जी की सर्व स्वीकार्यता को आंक पायें। भारत की उथल-पुथल वाली राजनीति के बीच अटल बिहारी वाजपेयी महानायक बनते जा रहे थे। बार-बार फिसलती सत्ता एक बार फिर फिसलने को तैयार थी। 1996 में 13 मई को तत्कालीन राष्ट्रपति शंकर दयाल शर्मा ने सबसे बड़े दल के नेता के रूप में अटल बिहारी वाजपेयी को देश के प्रधानमंत्री पद की शपथ लेने के लिए आमंत्रित किया। लेकिन यह सरकार 13 दिन ही चल पाई और अटल बिहारी वाजपेयी ने अन्य दलों के दबाव में आने की बजाय सरकार को कुर्बान करना चुना और उन्होंने इस्तीफा दे दिया। उसके बाद हुए चुनावों में फिर 13 माह के लिए राष्ट्रीय जनतांत्रिक गठबंधन की सरकार बनी। इस सरकार को परमाणु परीक्षण करने और विश्व में भारत की धाक बढ़ाने वाली सरकार के रूप में जाना जाएगा। इसी दौरान भारत पर प्रतिबंध थोप दिए गए लेकिन अटल बिहारी वाजपेयी बिना डरे भारत का भाल सुशोभित करते जा रहे थे। वो देश के अंदर विकास के नए आयाम गढ रहे थे।

तेरह माह बाद फिर देश में चुनाव हुए। इस बार फिर देश के प्रधानमंत्री वाजपेयी ही थे। इस दौर में उन्होंने पाकिस्तान के साथ शांति वार्ता की नई पहल की और तनाव खत्म करने को बस से लाहौर गए। लेकिन उनके विश्वास का बदला पाकिस्तान ने कारगिल में घुसपैठ करके लिया। जिसे भारत ने खदेड़ कर ही दम लिया। भारत ने पाकिस्तान को हरा दिया था। इस दौरान अमरीकी राष्ट्रपति ने अटल जी को यह कहते हुए युद्ध रोकने की अपील की थी कि यदि युद्ध नहीं रोका गया तो पाकिस्तान परमाणु हमला कर देगा। अटल जी ने बेहद शांत तरीके से जवाब दिया कि पाकिस्तान ने भारत पर हमला किया तो संसार के भूगोल से पाकिस्तान का नामो निशान मिट जाएगा।

अटल जी का जीवन अनेकों रोमांचक पहलुओं से भरा है, जिस भी विषय को छुओ, अटलजी से जुड़ी अनगिनत बातें सामने आ जाएंगी लेकिन उनकी यह बात हम सभी को याद रखनी चाहिए- सरकारें आएंगी और जाएंगी लेकिन यह देश रहना चाहिये, ये देश रहना चाहिये। ❑

(लेखक सेंटर फोर मीडिया रिसर्च एण्ड डवलपमेंट के निदेशक हैं)

भारतीय संस्कृति में समर्पित गुरु और समर्पित शिष्य की यह स्वस्थ परम्परा वैदिक काल से वर्तमान काल तक अजस्त्र धारा के रूप में प्रवाहित है। काल के विकास-क्रम से उसमें धीरे-धीरे अनेक विकृतियाँ आ गई हैं। शिक्षा का वास्तविक अर्थ, कोरे पुस्तकीय ज्ञान तक सीमित हो गया है, जिससे विद्यालय 'यंत्रालय' बन गये हैं, जहाँ मानव यंत्रों का निर्माण हो रहा है, मनुष्यों का निर्माण नहीं। इसलिए आज शिक्षकों की पूर्ववत गरिमा को नकारा जाने लगा है। आज शिक्षा, शिक्षक और शिक्षार्थी की जो दिशा और दशा है उससे कैसे समाज निर्माण की कल्पना की जा सकती है ? आज समस्त अवधारणाएँ बदल गई हैं। शिक्षा का उद्देश्य ज्ञानार्जन से अधिक अर्थार्जन हो गया है। हम अपने उद्देश्य से भटक रहे हैं, दिशाहीन हो रहे हैं।

शिक्षा जगत के प्रकाश पुंज : डॉ. राधाकृष्णन

❑ **डॉ. बुद्धमति यादव**

भारत भूमि महान् विभूतियों की जननी और कर्मस्थली रही है। प्रत्येक युग में समय-समय पर अनेक महान् विभूतियों का अवतरण हुआ है, जिन्होंने भारतीय सभ्यता, संस्कृति, धर्म, अध्यात्म और दर्शन की दिव्य ज्योति को अपने गूढ़ ज्ञान के माध्यम से आलोकित एवं विस्तारित किया है। अपनी अनूठी योग्यता और बेमिसाल कार्य पद्धति तथा गहन चिन्तन से सदैव समाज को एक नई दिशा प्रदान कर एक गरिमामय पद प्राप्त किया है। ऐसी ही एक महान् विभूति का अवतरण 5 सितम्बर सन् 1888 ई. को हुआ, जिन्हें हम डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन के नाम से जानते हैं।

गरीब ब्राह्मण परिवार में जन्में डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन सदैव शिक्षा के प्रति पूर्ण समर्पित रहे हैं। छात्र जीवन से लेकर 'भारत रत्न' प्राप्ति तक का सफर उनके शिक्षा के प्रति लगाव को दर्शाता है। छात्र जीवन में रिश्ते के एक भाई से पुस्तकें नि:शुल्क मिलने की आशा में इन्होंने स्नातक स्तर पर वही विषय लिए, जो विषय उनके भाई के पास थे। अधिस्नातक स्तर पर, दर्शनशास्त्र विषय का केवल अध्ययन ही नहीं किया, बल्कि उसे इस कदर आत्मसात किया कि वह उनकी रग-रग में समा गया। अध्ययन पूर्ण होते ही वे दर्शनशास्त्र के अध्यापन कार्य से जुड़ गए। अपने विषय की गहन जानकारी होने के कारण कुछ समय में ही इनकी गिनती दर्शनशास्त्र के विशेषज्ञ के रूप में होने लगी। भारतीय संस्कृति के वाहक डॉ. राधाकृष्णन अपनी योग्यता से देश-विदेश में अच्छे शिक्षक के रूप में प्रसिद्धि प्राप्त करने लगे। उनकी ख्याति के फलस्वरूप इन्हें ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय में पढ़ाने का अवसर मिला। पं. मदनमोहन मालवीय के विशेष आग्रह पर इन्होंने बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय का कार्यभार संभाला।

इनकी अपूर्व क्षमताओं के प्रभावस्वरूप आजादी के कुछ वर्षों पश्चात् इन्हें विश्वशक्ति रूस में भारत का राजदूत नियुक्त किया गया। इन्होंने सख्त कम्युनिस्ट स्तालिन को अपने चुम्बकीय व्यक्तित्व से प्रभावित कर मैत्रीपूर्ण सम्बन्धों की स्थापना की, जिससे रूस विश्वमंच पर भारत का प्रबल समर्थक बन गया। 1952 ई. में वे निर्विरोध रूप से उपराष्ट्रपति चुने गये। 1962 ई. में राधाकृष्णन ने भारत के सर्वोच्च राष्ट्रपति पद को सुशोभित किया। सन् 1954 ई. में उनके अद्भुत गुणों और प्रशंसनीय कार्यों को देखते हुए भारत के सर्वोच्च सम्मान 'भारत-रत्न' से विभूषित किया गया। विषय के गहन अध्ययन और आध्यात्मिक विश्वास के बल पर राधाकृष्णन ने आधुनिक समाज में शिक्षक के पद को गौरवान्वित करने का आदर्श प्रस्तुत कर केवल भारत में ही नहीं, अपितु सम्पूर्ण विश्व में शिक्षकों का मान बढ़ाया है।

डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन ने अपने जीवन की शुरूआत शिक्षक के रूप में की थी, अत: गुरु-शिष्य के सम्बन्धों से भली-भाँति परिचित थे। वे अपने विद्यार्थियों से अपार स्नेह रखते थे। अपने ओजस्वी व्याख्यानों, विनम्रता तथा सहृदयता के कारण विद्यार्थियों में विशेष प्रिय शिक्षक थे। उनका मानना था कि देश के युवकों को भावी जीवन के लिए तैयार करना ही शिक्षा का उद्देश्य होना चाहिए और यदि हम एक महान राष्ट्र का निर्माण करना चाहते हैं तो हमें अधिक संख्या में युवकों और युवतियों को इस प्रकार शिक्षित करना होगा कि उनमें चरित्र बल हो। हमारे पास ऐसे नर-नारी होने चाहिए जो दूसरों में अपनी झाँकी देखें। उनकी दृष्टि में राष्ट्र निर्माण की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए सबसे महत्त्वपूर्ण योगदान विश्वविद्यालयी शिक्षा का है। युवाओं की शक्ति को रचनात्मक बनाना, भारत के नवनिर्माण में उनकी भूमिका को महत्त्वपूर्ण बनाना ही विश्वविद्यालयी शिक्षा का उद्देश्य होना चाहिए क्योंकि युवाओं में अदम्य साहस, ऊर्जाऔर शक्ति का प्रवाह होता है, जिसका प्रयोग सृजनात्मक और कल्याणकारी उद्देश्यों की पूर्ति तथा समाज और देश की सेवा में होना चाहिए।

उच्च शिक्षा प्राप्त करने के पश्चात् विद्यार्थी में अन्तर्दृष्टि का विकास होना आवश्यक है अर्थात् युवाओं में सत-असत, उचित-अनुचित का अन्तर करने की क्षमता उत्पन्न होना। यह क्षमता केवल पुस्तकें पढ़ने से और रटा-रटाया ज्ञान प्राप्त करने से विकसित नहीं होती। इसके लिए शिक्षा क्षेत्र में हर स्तर पर योग्य शिक्षकों का होना आवश्यक है।

डॉ. राधाकृष्णन को प्राय: लोग 'शिक्षक' के रूप में अधिक जानते हैं, परन्तु शिक्षा के साथ ही इन्होंने लेखन, राजनीति और शासन आदि क्षेत्रों में भी अपनी योग्यता और पटुता का परिचय दिया। लगभग चालीस वर्षों तक शिक्षा के क्षेत्र में किये उनके कार्यों को भुलाया नहीं जा सकता, उसके साथ-साथ एक कुलपति, उपराष्ट्रपति, राष्ट्रपति, राजदूत आदि के पद पर रहते हुए देश के हित में जो योगदान दिया है उसे विस्मृत नहीं किया जा सकता। डॉ. राधाकृष्णन प्रत्येक शिक्षक के लिए प्रेरणा स्रोत के रूप में सदैव याद किये जाते रहेंगे।

डॉ. राधाकृष्णन प्राचीन भारतीय परम्परा के अनुसार शिक्षक को बहुत उच्च स्थान देते थे। उनका मानना था कि ''किसी भी विद्यालय का महत्त्व उसके विशाल भवनों, प्रयोगशालाओं और साधनों से नहीं होता, उसका महत्त्व उसके योग्य शिक्षकों से होता है।'' इसलिए राधाकृष्णन चाहते थे कि समाज में योग्यतम व्यक्ति शिक्षक बने। ऐसा होने पर ही शिक्षा श्रेष्ठ नेतृत्त्व उत्पन्न कर सकती है। योग्य शिक्षक उस कुम्हार की भाँति है, जो शिष्य रूपी कच्ची मिट्टी को आकार देकर श्रेष्ठ नागरिक बनाता है। इसके साथ-साथ गुरु स्वयं की शिक्षाओं को शिष्य पर थोपता नहीं है, बल्कि वह अपने आचरण और व्यवहार से शिष्य के सामने ऐसा उदाहरण प्रस्तुत करता है, जिससे शिष्य वैसा व्यवहार अपनाने के लिए प्रेरित होते हैं। समर्थ गुरु अपने शिष्यों को ज्ञान देने के साथ-साथ जीवन में अनुशासन में रहने की कला भी सिखाते हैं। कबीर ने अपनी 'साखी' में गुरु के सामर्थ्य को इस प्रकार व्यक्त किया है -

सतगुरु की महिमा अनँत, अनँत किया उपकार।
लोचन अनँत उघाड़िया, अनँत दिखावणहार।

भारतीय संस्कृति में समर्पित गुरु और समर्पित शिष्य की यह स्वस्थ परम्परा वैदिक काल से वर्तमान काल तक अजस्त्र धारा के रूप में प्रवाहित है। काल के विकास-क्रम से उसमें धीरे-धीरे अनेक विकृतियाँ आ गई हैं। शिक्षा का वास्तविक अर्थ, कोरे पुस्तकीय ज्ञान हो गया है, जिससे विद्यालय 'यंत्रालय' बन गये हैं, जहाँ मानव यंत्रों का निर्माण हो रहा है, मनुष्यों का निर्माण नहीं। इसलिए आज शिक्षकों की पूर्ववत गरिमा को नकारा जाने लगा है। आज शिक्षा, शिक्षक और शिक्षार्थी की जो दिशा और दशा है उससे कैसे समाज निर्माण की कल्पना की जा सकती है ? आज समस्त अवधारणाएँ बदल गई हैं। शिक्षा का उद्देश्य ज्ञानार्जन से अधिक अर्थार्जन हो गया है। हम अपने उद्देश्य से भटक रहे हैं, दिशाहीन हो रहे हैं।

वर्तमान शिक्षा व्यवस्था के अन्तर्गत शिक्षक छात्र के सम्बन्धों में आये समसामयिक परिवर्तनों के कारण इनके बीच परस्पर प्रेम, श्रद्धा, आदर, स्नेह का अभाव परोक्ष-अपरोक्ष रूप से स्थापित होता जा रहा है जिसके लिए शिक्षक, छात्र, शिक्षा-व्यवस्था, आधुनिक परिवेश, मानसिकता आदि सभी अवयव उत्तरदायी हैं। ऐसे वातावरण में डॉ. राधाकृष्णन एक अलौकिक प्रकाश-पुंज के रूप में सदैव शिक्षा जगत को आलोकित करते रहेंगे। डॉ. राधाकृष्णन का सम्पूर्ण जीवन-चरित शिक्षकों के लिए आदर्श स्वरूप है। इनके जीवन से प्रेरित होकर जिन महत्त्वपूर्ण सूत्रों को हम आत्मसात् कर शिक्षक गरिमा को पुनर्जीवित कर सकते हैं वे हैं-शिक्षक का अपने विषय के प्रति प्रेम का भाव होना, उसके साथ-साथ उस विषय का गहन अध्ययन होना, शिक्षण कार्य के प्रति पूर्ण समर्पण का भाव होना और शिक्षक में उच्च नैतिक गुणों का समावेश होना आदि। यदि समाज में गुरु-शिष्य सम्बंधों को पुनर्जीवित करना है तो निश्चित रूप से हमें डॉ. राधाकृष्णन के बताये सन्मार्ग पर चलना होगा। विद्यार्थियों में शिक्षक के प्रति सम्मान जगे और शिक्षक और विद्यार्थी में परस्पर प्रेम का अटूट बन्धन बना रहे और भारतीय सभ्यता और संस्कृति की पहचान धूमिल ना हो, इसी सोच के साथ हमें अपने कर्तव्यों का ईमानदारी से पालन करना होगा। तभी हमारे लिए शिक्षक दिवस मनाने का औचित्य सिद्ध हो सकेगा। डॉ. राधाकृष्णन के जन्मदिन को मनाने की सार्थकता भी इसी बात में निहित है कि हम उनके विचारों को मूर्त रूप दे सकें। 17 अप्रैल, 1975 ई. में इनका स्वर्गवास हो गया था। आज आवश्यकता है हमें उनके इस दृष्टिकोण को जीवन्त रखने की, जिसमें उनकी शिक्षक के प्रति गहरी सोच परिलक्षित होती है -''एक चिकित्सक की गलती से एक प्राण, एक राजनीतिक की गलती से एक राष्ट्र तथा एक शिक्षक की गलती से सम्पूर्ण पीढ़ी ही समाप्त हो जाती है।''❑

(सह-आचार्य, जी.डी. कॉलेज, अलवर)

शिक्षक दिवस की सार्थकता

❑ **डॉ. प्रकाश चंद्र अग्रवाल**

आवश्यकता शिक्षक दिवस द्वारा सम्मान- देने या ना देने की न होकर, ऐसे शिक्षक, जिनका लक्ष्य और जिनका जीवन वास्तविक रूप से शिक्षा व विद्यार्थी के लिए समर्पित है, समाज के सामने लाना है, इस वित्तीय आपा-धापी के युग में मूल्यों की पुनः स्थापना, शिक्षा को राजनीति व राजनीतिकरण से दूर कर कार्य के प्रति समर्पण भावना का उदय करना समाज की नैतिक जिम्मेदारी बन जाता है। मूल्यों की पुनः स्थापना ही शिक्षक व शिष्य दोनों के कर्तव्यबोध की भावना का उदय करेगी। सच्चे अर्थों में भौतिकतावाद से परे मानव सम्बन्धों की प्रगाढ़ता, आध्यात्मिकता की तरफ ले जाएगी तथा वही दिन शिक्षक दिवस मनाए जाने की सार्थकता को सिद्ध करेगा।

5 सितम्बर का दिन साल भर में आने वाला वह विशेष पर्व है, जो जिन्दगी को सार्थक रूप में जीना सिखाने वाले फरिश्तों के सज़दे में सर झुकाने के लिए मनाया जाता है। यह दिन पूर्व राष्ट्रपति डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्ण के जन्म दिवस (5 सितम्बर) पर उनके आग्रह पर शिक्षकों को सम्मानित करने व आदर देने के लिए शिक्षक दिवस के रूप में प्रति वर्ष भारत में समारोह-पूर्वक मनाया जाता है (शिक्षक दिवस विश्व के विभिन्न देशों में 5 अक्टूबर को हर वर्ष मनाया जाता है)। गुरु-शिष्य परंपरा पुरातन समय से चली आ रही है। गुरु अपना सर्वस्व ज्ञान (संज्ञानात्मक, भावात्मक व मनोपेशीय) शिष्य को स्नेहपूर्वक प्रदान करता है और उसे संसार की सभी समस्याओं से जूझने व बाधाओं को दूर करने योग्य बनाते हुए उसके भविष्य को सँवारता है। गुरु का स्थान ईश्वर के ऊपर दिया गया है। गुरु, ईश्वर द्वारा बनाई गई मानव मूरत को तराश कर भव्य बना देता है, पौधे की साज संवार के लिए माली की तरह काट-छाँट कर गुरु द्वारा बालक की गलतियों का परिमार्जन व निराकरण करना, कमियों का आकलन कर उनसे निपटने की कला से अवगत करवाकर पूर्णता प्रदान करना व चुनौतियों को सार्थक अवसर में रूपान्तरित करने की मनोदशा का निर्माण कर जीने के कौशल से परिपूर्ण करना सिखाता है, जिससे बालक समाज में अच्छी तरह से समायोजित हो जाए।

लाखों विद्यार्थियों के भविष्य को गढ़ने तथा सहायता करने में अनगिनत शिक्षकों द्वारा दिये गये अप्रतिम योगदान का धन्यवाद और सम्मान करने के लिए ही शिक्षक दिवस मनाया जाता है परन्तु यह विचारणीय है कि क्या एक दिन शिक्षक दिवस मनाकर हम शिक्षकों को वास्तविक अर्थों में सम्मान दे पा रहे हैं? प्रकृतिवादी दार्शनिक बालक की शिक्षा व दीक्षा में प्रकृति को गुरु मानते रहे हैं। उनके अनुसार प्रकृति के अनुरूप व्यवहार ना करने पर स्वयं प्रकृति दण्डित करती है और यदि बालक प्रकृति के अनुरूप अपने-आप को समायोजित नहीं कर पाएगा तो वह इस संघर्षमयी जीवन में जीवित नहीं रह पाएगा। प्रकृतिवादियों द्वारा दिया गया योग्यतम की उत्तरजीविता (Survival of the Fittest) का नियम प्रकृति को गुरु का स्थान देता है। अन्य दार्शनिक विचारधाराओं में गुरु की प्रभावी भूमिका की व्याख्या संगत दर्शन के रूप में की है। आधुनिक समय में निर्मित वाद (Constructive Approach) शिक्षक का स्थान सुसंगत सुविधा/वातावरण प्रदायक (Facilitator) का मानती है। समाज के साथ रिश्ते के अन्तर्निर्वाह के साथ-साथ बच्चे को ज्ञान का निर्माण कर स्वयं कौशल की संप्राप्ति करनी है। शिक्षक का योगदान उनका मार्गदर्शन करना है एवं सुसंगत वातावरण व अधिगम संस्थितियाँ प्रदान करना है ताकि शिक्षार्थी स्वयं ज्ञान का निर्माण कर सके।

एक तरफ यूरोप में डी–स्कूलिंग (De-schooling) की अवधारणा जोर पकड़ रही है, साथ ही तकनीकी के विकास के साथ विभिन्न मृदु तकनीक कौशल (सॉफ्ट स्किल्स) के सृजन द्वारा एक क्षणिक क्लिक भर से आपको आवश्यक जानकारियाँ चन्द सैकेण्डस में उपलब्ध हो जाती हैं, जिससे शिक्षक के प्रति समर्पण भावना का कहीं ना कहीं लोप हो रहा है। शिक्षक ज्ञान का स्रोत है। शिक्षक द्वारा कहा गया वाक्य सत्य का स्रोत है। शिक्षक गलत नहीं हो सकता। शिक्षक वह नैया है जो नदी पार करने में मदद करेगी इन मान्यताओं को धीरे–धीरे समाप्त कर बच्चों में यह स्थापित किया जा रहा है कि शिक्षक भी मानव है वह भी गलतियाँ कर सकता है, तो बालक के मन में बचपन से यह बात बैठ जाती है कि शिक्षक उनमें से ही एक है, और वह आलोचनाओं से परे नहीं है, तो क्या वह बालक शिक्षक को अपने आदर्श के रूप में स्थापित कर यथोचित रूप से उसे सम्मानित कर पाएगा। क्या सच्चे मार्गदर्शक (गुरु) के संरक्षण के अभाव में बच्चों का विकास केवल भौतिक व यंत्रवत न रह जाएगा, क्या बच्चों का आवेगात्मक, भावनात्मक व आध्यात्मिक विकास हो पाएगा, क्या वे अपने भौतिक, सामाजिक व आध्यात्मिक परिवेश में सामंजस्य कर इनके प्रति संवेदनशील बन पाएँगे।

इधर तकनीक व संचार, विशेषकर बेतार यंत्रों ने मनुष्य के जीवन को बेहद सरल व आसान बना दिया है, भौगोलिक दूरियों को कम कर समस्त विश्व को एकदम नजदीक ला दिया है परन्तु भावानात्मक रूप से मनुष्य को मनुष्य से दूर करने का कार्य किया है, आज रिश्तों में वो समरसता, सौहार्द व अपनापन देखने को नहीं मिलता, कारण यह है कि हर व्यक्ति स्मार्ट फोन से जुड़ा है, अपनी बात व्यक्त करने का माध्यम ट्विटर बन गया है। कोई भी त्योहार है या कोई विशेष मौका है, उस पर बने बनाए ढ़ेरों मैसेजेज (संदेश) उपलब्ध हैं और नहीं तो किसी के भेजे संदेश को आप तुरन्त अनेक लोगों को भेज सकते हैं, तो लोग आपसी मेल–मिलाप के स्थान पर संदेश भेजकर विशेष मौकों पर औपचारिकता पूरी कर लेते हैं। साथ ही–मुद्रा जो आर्थिक जीवन का आधार मानी जाती है आज वह रिश्तों तथा सामाजिक जीवन का आधार बन गई है। रिश्तों का माप–तौल वित्तीय तराजू के पलड़ों पर रखकर किया जाता है, आज इस वित्तीय युग में शिक्षा–शिक्षालय–शिक्षार्थी व शिक्षक सभी वित्तीय पहलू के अधीन होकर शिक्षा के व्यापार में लगे हैं। उनका सरोकार मात्र इस हाथ ले उस हाथ दे तक सिमट कर रह गया है। जीवन बहुत गतिमय हो गया है, दिल को छू लेने वाले दिल में एक मिठास भर देने वाले गुरु–शिष्य के रिश्तों की कमी महसूस होने लगी है, भावनात्मक लगाव में कमी आने लगी है। ऐसे समय में शिक्षक दिवस को समारोहपूर्वक मनाकर क्या समाज में शिक्षकों को उचित स्थान दिला पाएँगे।

इधर शिक्षक ने मुँह फेरा उधर शिक्षार्थी फिस्स कर उपहास करते नजर आते हैं। कालान्तर में इस स्थिति तक आ जाने के कारणों का विश्लेषण कर, गुरु को अपने कार्यों व उत्तरदायित्वों को आत्मसात कर अपने को पुनर्स्थापित करना होगा। ट्विटर पर ट्वीट कर बड़े–बड़े शब्दों का उपयोग कर शिक्षार्थी शिक्षक दिवस पर मैसेज भेज कर अपनी भावनाओं के प्रदर्शन की औपचारिकताओं का निर्वाह करते हैं, लेकिन व्यक्त संदेश व वास्तविकताएँ आपस में कोसों अलग हैं। विद्यालयों व महाविद्यालयों में स्टेज पर खड़े होकर बड़े–बड़े भाषण दिये जाते हैं शिक्षकों को समाज का पथ प्रदर्शक व मार्गदर्शक बताकर, उनके दायित्वों व समाज में रहे स्थान से अवगत करवाया जाता है। शिक्षक के शिक्षार्थी को सर्वांगीण विकास के लिए उद्दीपक बताया जाता है। परन्तु क्या मन व हृदय से छात्र शिक्षक व शिक्षा के प्रति समर्पित हैं। डिग्री लेना और उस डिग्री के माध्यम से नौकरी प्राप्त करना छात्र के जीवन का लक्ष्य बनकर रह गया है। जीवन को प्रभावी रूप से जीना व आवश्यक कौशल का निर्माण दूसरी वरीयता बन गया है।

परन्तु आज भी इस भौतिकतावादी युग में ऐसे शिक्षक हैं जो दिये की बाती की तरह जलकर जग के अन्धकार को दूर करने के लिए पूर्णत: समर्पित हैं। वे समाज रूपी इमारत को सुदृढ़ता से नींव की तरह थामे हैं, परन्तु वे किसी शिक्षक दिवस द्वारा दिए गए सम्मान पर निर्भर नहीं हैं। हृदय से निकले सम्मान के दो शब्द उनको गरिमामयी बना देते हैं। विद्यार्थियों की भीड़ से अलग हटकर एक ज्ञान पिपासु विद्यार्थी, शिक्षक के जीवन को सार्थक बना देता है। आवश्यकता शिक्षक दिवस द्वारा सम्मान– देने या ना देने की न होकर, ऐसे शिक्षक, जिनका लक्ष्य और जिनका जीवन वास्तविक रूप से शिक्षा व विद्यार्थी के लिए समर्पित है, समाज के सामने लाना है, इस वित्तीय आपा–धापी के युग में मूल्यों की पुन: स्थापना, शिक्षा को राजनीति व राजनीतिकरण से दूर कर कार्य के प्रति समर्पण भावना का उदय करना समाज की नैतिक जिम्मेदारी बन जाता है। मूल्यों की पुन: स्थापना ही शिक्षक व शिष्य दोनों के कर्तव्यबोध की भावना का उदय करेगी। सच्चे अर्थों में भौतिकतावाद से परे मानव सम्बन्धों की प्रगाढ़ता, आध्यात्मिकता की तरफ ले जाएगी तथा वही दिन शिक्षक दिवस मनाए जाने की सार्थकता को सिद्ध करेगा।

गुरु सदैव वंदनीय व अभिनन्दनीय होते है –

बंदउ गुरु पद कंज कृपा सिंधु नर रूप हरि
महामोह तम पुंज जासु बचन रवि कर निकर।

गुरु कृपा के सागर मानव रूप में भगवान हैं जिनके वचन माया मोह के घने अंधकार का विनाश करने हेतु सूर्य किरण के सदृश्य हैं। मैं उस गुरु के कमल रूपी चरणों की विनती करता हूँ। ❑

(आचार्य, भौतिक शास्त्र एवं प्राचार्य
क्षेत्रीय शिक्षा संस्थान, भुवनेश्वर, ओड़िशा)

आज आवश्यकता इस बात की है कि पुरस्कृत शिक्षक अपने क्षेत्र में उत्कृष्ठ शैक्षिक वातावरण बनाकर एक नजीर पेश करे। उनके विचारों, कार्यों, व्यवहार में श्रेष्ठतम परिवर्तन समाज को दिखाई दे। उनका स्वत: समाज में सम्मान बढ़ेगा तब सहयोगी शिक्षकों को भी मार्गदर्शन मिलेगा तथा अब तक पुरस्कृत हजारों शिक्षक शैक्षिक गुणवत्ता के लिए नेतृत्त्व कर लेंगे तो शेष लाखों शिक्षक उनका अनुकरण करेंगे, ऐसा मत है। वर्तमान में आवश्यकता है और पुरस्कृत शिक्षकों से सम्मानजनक आशा है कि शिक्षक वर्ग का श्रेष्ठतम उदाहरण देकर नेतृत्त्व कर राष्ट्र की अपेक्षा पर खरे उतरते हुए स्वामी विवेकानन्द के संदेश को मूर्तरूप दे - 'हमें ऐसे बालकों का निर्माण करना है जिनके चेहरे पर आभा, शरीर में बल, मन में प्रचण्ड इच्छा शक्ति, बुद्धि में पाण्डित्य जीवन में स्वावलम्बन, हृदय में शिवाजी, प्रताप, ध्रुव, प्रहलाद की जीवन गाथाएँ अंकित हो और इन्हें देखकर महापुरुषों की स्मृतियाँ झंकृत हो उठे।'

पुरस्कृत शिक्षकों से राष्ट्र की अपेक्षा

❑ बजरंग प्रसाद मजेजी

अनादिकाल से भारतीय जीवनमूल्यों एवं धर्म-दर्शन में गुरु का सर्वोच्च स्थान रहा है। सभ्यता-संस्कृति के संरक्षण-संवर्धन एवं समाज को मार्गदर्शन देने का गुरुतर दायित्त्व गुरुजनों का है। गुरु-शिष्य की उच्च परम्परा अपने देश की एक विशेष धरोहर रही है। इसी परम्परा के निर्वहन करने के लिए शिक्षक को राष्ट्र निर्माता माना गया है। राष्ट्र-समाज को जिस दिशा और दशा में रखना है, इसकी गुरुतर जिम्मेदारी शिक्षक की है। शिक्षा जगत में अपेक्षित परिवर्तन शिक्षक ही ला सकता है। इसलिए स्वामी विवेकानन्द ने कहा है कि 'शिक्षक के प्रति श्रद्धा, समर्पण, विनम्रता तथा सम्मान की भावना के बिना जीवन में कोई विकास नहीं कर सकता।' यह भी कहा जाता है कि किसी भी देश का वर्तमान देखना है तो वहाँ के शिक्षक को देखो और भविष्य देखना हो तो वहाँ के विद्यार्थियों की ओर देखो। शिक्षक अपने जीवन में अनुशासन, ईमानदारी और नैतिक मूल्यों का पालन करता है तो विद्यार्थी भी उनके गुणों को आत्मसात कर जीवन में वैसा ही आचरण करेंगे। शिक्षक का आचरण एवं व्यवहार विद्यार्थी के लिए अनुकरणीय होता है। गुरु शिष्य की ऊर्जा को पहचानकर उसके सम्पूर्ण सामर्थ्य को विकसित करने में सहायक होकर, योग्य नागरिक बनाता है।

गुरु पूजन परम्परा

भारत में आदिकाल से आषाढ़ माह की पूर्णिमा- गुरु पूर्णिमा, व्यास पूर्णिमा कहलाती है। यह पूर्णिमा ज्ञान प्राप्त करने, गुरु से आशीर्वाद प्राप्त करने की, सद्‌गुरु के पूजन करने की तिथि मानी जाती है। ऋषियों, आचार्यों, गुरुजनों के आश्रम-गृह में जाकर शिष्यगण पूजन करते हैं। भारत में मान्यता है कि जिन्होंने त्याग-तपस्या कर ज्ञान की राह दिखाई, सन्मार्ग दिखाया, उनका गुरु पूजन पर्व मनाते हैं। ऐसा माना जाता है कि इस दिन जो एकाग्रभाव से गुरु का पूजन श्रद्धाभाव से करता है, उसे गुरु का आशीर्वाद मिलता है। महर्षि वेदव्यास को सनातन परम्परा में गुरु का परम पद प्राप्त था। इस परम्परा को महर्षि वशिष्ठ, विश्वामित्र, परशुराम, संदीपन, द्रोणाचार्य ने आचार्य पद प्राप्त कर, शिष्यों को आषाढ़ पूर्णिमा के दिन सार्वजनिक रूप से आशीर्वाद देने की परम्परा चलाई। वर्षों बाद तक रामकृष्ण परमहंस, समर्थ गुरु रामदास, स्वामी दयानन्द सरस्वती,

गुरुनानक देव, स्वामी विवेकानन्द ने अपने शिष्यों को आध्यात्मिक शिक्षा देकर, समाज व्यवस्था को सर्वजनहितार्थ रूप से चलाने की शिक्षा दी, जिसे महामना पं. मदनमोहन मालवीय, गुरुवर रवीन्द्रनाथ ठाकुर, महात्मा गाँधी, डॉ. राधाकृष्णन ने अनुकरण कर वर्तमान पीढ़ी का मार्गदर्शन किया। देश में आज भी गुरुपूर्णिमा के दिन शिष्यगण अपने गुरुओं का पूजन कर परम्परा का निर्वाह कर रहे हैं। विद्यालयों में भी इस दिन गुरु पूजन का कार्यक्रम किया जाता है।

वर्तमान में शिक्षक सम्मान

डॉ. राधाकृष्णन के जन्म दिवस 5 सितम्बर को देश में शिक्षक दिवस के रूप में मनाया जाता है। विभागीय अनुशंसा से राज्यस्तर एवं राष्ट्रस्तर पर चयनित ऐसे शिक्षक जिन्होंने अपने कार्यक्षेत्र में श्रेष्ठ परिणाम देने, विद्यालय-विकास में अग्रणी भूमिका का निर्वहन करने, नवाचारों द्वारा शिक्षण करने, विद्यार्थी एवं अभिभावक से सम्पर्क, विभागीय योजनाओं में सक्रिय भूमिका का निर्वाह करने वाले शिक्षक का चयन किया जाता है। राज्य स्तरीय शिक्षक सम्मान समारोह में राज्य के मुख्यमंत्री, शिक्षामंत्री, पंचायतराज विकास मंत्री, शिक्षा विभाग के शीर्ष अधिकारियों द्वारा समारोह आयोजित कर घोषित पुरस्कार राशि, स्मृति चिह्न, प्रशस्ति पत्र देकर सम्मानित किया जाता है। राज्यों से पुरस्कार प्राप्त शिक्षकों में से विभागीय नियमों के अन्तर्गत आने वाले श्रेष्ठ पुरस्कृत शिक्षकों में सम्पूर्ण देश से चयनित शिक्षकों को इसी दिवस पर माननीय राष्ट्रपति, प्रधानमंत्री, मानव संसाधन विकास मंत्री द्वारा पुरस्कृत किया जाता है। इसी परम्परा को राज्यों में मण्डल स्तर, जिला स्तर पर भी आयोजन कर शिक्षकों को सम्मानित किया जाता है। स्वतंत्रता दिवस एवं गणतंत्र दिवस पर जिला प्रभारी मंत्री, जिला कलेक्टर द्वारा समारोह में सम्मानित किया जाता है। इसके समानान्तर कई सामाजिक संस्थाओं, शिक्षक संगठनों, शिक्षा बोर्ड, पुरस्कृत शिक्षक फोरम, विद्यालयी स्तर पर भी क्षेत्र के श्रेष्ठ शिक्षकों का सम्मान किया जाता है।

शिक्षकों के कर्त्तव्य के प्रति उदासीनता का परिणाम

उपर्युक्त संस्थाओं द्वारा शिक्षकों का सम्मान शिक्षक दिवस या गुरु पूर्णिमा पर किया जाता है, जिसमें लाखों शिक्षकों का प्रतिनिधित्त्व कुछ श्रेष्ठ शिक्षक के रूप में करते हैं। लेकिन इसके विपरीत शिक्षकों के मान-सम्मान में कमी के कारण शिक्षा विभाग, समाज चिन्तित है। राष्ट्र में जिस शिक्षक का सम्मान वर्षों से होता आया है, वर्तमान में बहुत कमी देखी जा रही है। शिक्षकों के प्रति समाज का नजरिया सम्मान-जनक नहीं रहा है। इस विषय पर चिंतन करें तो पायेंगे कि आज का शिक्षक स्वयं को मात्र वेतन भोगी कर्मचारी मान बैठा है। शैक्षिक गुणवत्ता में कमी, समाज-अभिभावक से दूरी, शिक्षण कार्य में कोताही, समय का पाबन्द न होना, देर से आना, जल्दी लौटना, शिक्षण की तैयारी करके न आना, बालकों की जिज्ञासा शान्त न करना, विद्यार्थियों से सकारात्मक संवाद न करना, प्रभावी शिक्षण न करने, कर्त्तव्य के प्रति उदासीनता के कतिपय शिक्षकों की मनोवृत्ति एवं कार्य व्यवहार से शिक्षकों का सम्मान कम होता जा रहा है।

पुरस्कृत शिक्षकों से राष्ट्र की अपेक्षा

शिक्षकों के सम्मान एवं श्रेष्ठ कार्य करने वाले शिक्षकों को केन्द्र, राज्य स्तर पर सैकड़ों शिक्षकों को प्रतिवर्ष सम्मानित किया जाता है। अब तक देश में यह संख्या हजारों तक पहुँच चुकी है। देश में ऐसे शिक्षकों के अनुकरणीय, प्रशंसनीय कार्यों का लेखा, प्रशस्ति पत्र में शिक्षक दिवस समारोह में वाचन किया जाता है। परन्तु देखा यह जा रहा है कि सम्मान प्राप्त करने के बाद पुरस्कृत शिक्षक भी सहयोगी शिक्षकों की श्रेणी से उच्च श्रेणी प्राप्त नहीं करता है। उसके विद्यालय, गाँव/शहर/ विभाग में उसका नाम अंकित होता है, समाचार पत्रों में बधाई प्रकाशित होती है, कालान्तर में उसके कार्य व्यवहार में कोई अन्तर नहीं दिखाई देता है। ऐसे भी उदाहरण मिले हैं कि एक शिक्षक 2-3 बार राज्य पुरस्कार प्राप्त कर लेता है। लेकिन विद्यार्थियों, समाज, कार्यक्षेत्र में वह विशिष्ट स्थान नहीं बनाता है। ऐसे उदाहरण देखने-सुनने को नहीं मिल रहे कि राज्य स्तरीय/ राष्ट्रपति स्तरीय पुरस्कृत शिक्षक ने शिक्षा क्षेत्र में नया अध्याय जोड़ा या इतना श्रेष्ठ शिक्षण कार्य किया कि क्षेत्र के शिक्षक-विद्यार्थी उसका अनुकरण करने को अग्रसर हों। होना तो यह चाहिए कि विभागीय पुरस्कृत शिक्षक ऐसा आदर्श प्रस्तुत करें कि वह शैक्षिक गुणवत्ता, विद्यालय विकास में सहभागिता से, अनुकरणीय शिक्षक के रूप में पूजनीय हो जाये। तब शिक्षक दिवस पर पुरस्कृत करने की विभाग की मंशा का भी प्रतिफल मिल सकेगा। आज आवश्यकता इस बात की है कि पुरस्कृत शिक्षक अपने क्षेत्र में उत्कृष्ट शैक्षिक वातावरण बनाकर एक नजीर पेश करे। उनके विचारों, कार्यों, व्यवहार आदि में श्रेष्ठतम परिवर्तन समाज को दिखाई दे। उनका स्वत: समाज में सम्मान बढ़ेगा तब सहयोगी शिक्षकों को भी मार्गदर्शन मिलेगा तथा अब तक पुरस्कृत हजारों शिक्षक शैक्षिक गुणवत्ता के लिए नेतृत्त्व करेंगे तो शेष लाखों शिक्षक उनका अनुकरण करेंगे, ऐसा मत है। वर्तमान में आवश्यकता है और पुरस्कृत शिक्षकों से आशा है कि शिक्षक वर्ग का श्रेष्ठतम उदाहरण देकर नेतृत्त्व कर राष्ट्र की अपेक्षा पर खरे उतरते हुए स्वामी विवेकानन्द के संदेश को मूर्तरूप दे - 'हमें ऐसे बालकों का निर्माण करना है जिनके चेहरे पर आभा, शरीर में बल, मन में प्रचण्ड इच्छा शक्ति, बुद्धि में पाण्डित्य जीवन में स्वावलम्बन, हृदय में शिवाजी, प्रताप, ध्रुव, प्रहलाद की जीवन गाथाएँ अंकित हों और इन्हें देखकर महापुरुषों की स्मृतियाँ झंकृत हो उठे।' पुरस्कृत शिक्षकों एवं शिक्षकों से राष्ट्र को यही अपेक्षा है। ❑

(स्वतंत्र लेखक)

शिक्षक और पेशेवर नैतिकता

वर्तमान में शिक्षक मित्रवत होना चाहिए। भय आधारित अनुशासन का कोई स्थान नहीं है। सूचनाएँ विद्यार्थियों को भी उपलब्ध हैं वे शिक्षक से इन सूचनाओं के उपयोग, विश्लेषण और भविष्य के प्रति इनके अर्थों को समझना चाहते हैं। विद्यार्थियों की यह माँग पूरी करना शिक्षकों की पेशेवर नैतिकता का क्षेत्र है। शिक्षा एक विशिष्ट पेशेवर क्षेत्र है इसकी गरिमा और सम्मान को अन्य पेशों के बराबर मानने में यदि कहीं अपमान महसूस होता है तो भी हम इस बात से इन्कार नहीं कर सकते कि विशिष्टता की यदि हम माँग करते हैं तो इसके हकदार हम तभी होंगे जब नैतिकता की दृष्टि से शिक्षक अन्य पेशों की नैतिकता के लिये भी अनुकरणीय होंगे। विशिष्टता का हकदार वही होता है जो उच्च नैतिक मूल्यों से जीवन का संचालन करता है।

❑ **डॉ. रेखा यादव**

आज का समय पेशेवर विशेषज्ञता का समय है। मनुष्य के आध्यात्मिक विकास का प्रश्न हो अथवा समाज के सामान्य व्यवहार में उठना-बैठना हो, सब कुछ पेशेवर सेवाओं के अधीन है। चुनावों के अन्तरराष्ट्रीय-राष्ट्रीय स्तर पर प्रबन्ध हो अथवा मानवीय रिश्तों में बेहतर प्रस्तुति का प्रश्न हो, सेवा क्षेत्र में प्रयोजन से महत्त्वपूर्ण परिणाम बन गया है। शिक्षा को पेशागत क्षेत्र मानने से बहुधा इन्कार किया जाता है, परन्तु वास्तविकता के धरातल पर यह एक ऐसा पेशा बन गया है जिसमें सबसे कम विशेषज्ञता और न्यूनतम प्रतिबद्धता है। पेशेवर क्षेत्र आज के समय प्रतिस्पर्धा के क्षेत्र हैं। तकनीक के इस युग में परिणाम का मानक महत्त्वपूर्ण है परन्तु परिणाम बहुपक्षीय होता है इसलिये एक दृष्टि से प्राप्त किया गया परिणाम दूसरे पक्ष में रिक्तता दर्शाता है। अधिक अंक से उत्तीर्ण विद्यार्थी निराशा एवं अवसाद मे डूब जाते हैं। कम अंक प्राप्त विद्यार्थी मौज-मजा खूब कर लेते हैं परन्तु आगे विकास के अवसर न मिलने पर अनैतिक, असामाजिक पेशों से मजबूरी वश जुड़ जाते हैं। पेशेवर नैतिकता का सबसे महत्त्वपूर्ण प्रश्न यही है कि पेशा समाज स्वीकृत हो तथा वैयक्तिक एवं सामाजिक शुभ में वृद्धि करने वाला हो। इस दृष्टि से शिक्षक सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण माँग क्षेत्र है।

वर्तमान में शिक्षा की बदहाल स्थिति का कारण शिक्षकों की पेशेवर विशेषज्ञता में कमी होना है। पेशेवरता को हमारे समाज में नकारात्मक माना जाता है। शुल्क के बदले में सेवा को हम असम्मानजक समझते आये हैं परन्तु समाज में परम्परागत आजीविका के साधनों में बदलाव आये हैं। सबको अवसरों की समानता अपनी रुचि एवं योग्यतानुसार पेशा निर्धारण आधुनिक लोककल्याणकारी राज्य का सूत्र है। गुरुकुल युग में शिक्षा राज्य से स्वतन्त्र होती थी और उसका स्वरूप तथा आवश्यकताएँ भी भिन्न थी। वर्तमान में शिक्षा प्रत्येक सेवा क्षेत्र की आवश्यक कसौटी है। यहाँ तक कि स्वच्छता हेतु कर्मचारियों की नियुक्ति में भी, पंचायत चुनावों में भी औपचारिक शिक्षा की माँग की जाने लगी है।

बदलते हुए इस दौर में समाज को आज प्रत्येक स्तर पर शिक्षकों की आवश्यकता है । प्राथमिक और पूर्व प्राथमिक स्तर से लेकर उच्च शिक्षा तक शिक्षकों में भिन्न-भिन्न योग्यताएँ और उस स्तर के विद्यार्थियों के सच्चे सहयोगी बन पाने की निपुणता आवश्यक है। निचले तल की शिक्षा

में जहाँ धैर्य की अधिक आवश्यकता है तो स्तर बढ़ने के साथ अकादमिक रिकार्ड के उत्तम होने की माँग आवश्यक हो जाती है।

वर्तमान में जिस प्रकार से सरकारी एवं गैर सरकारी स्तर पर विद्यालयों एवं महाविद्यालयों में नियुक्ति की जा रही है वहाँ सिर्फ अकादमिक रिकार्ड को ही मानक माना जा रहा है जबकि एक पेशेवर शिक्षक का नैतिक रूप से पेशेवर होना आवश्यक है। पेशेवर नैतिकता सेवा क्षेत्र में आचरण की जो माँग करती है वह माँग और पूर्ति का यन्त्रवत संचालित नियम नहीं है। यह मानवीय सम्बन्धों और उत्तरदायित्व का भी क्षेत्र है। बिना उत्तरदायित्व के प्रत्येक मानवीय सम्बन्ध अपनी गरिमा और सार्थकता खो देता है। शिक्षण भी ऐसा ही पेशा है। शिक्षक अपने विद्यार्थियों के समुचित विकास के प्रति उत्तरदायी है। प्रत्येक पेशा नैतिकता की दृष्टि से कुछ आवश्यक मानकों की अपेक्षा रखता है जैसे -

- पेशेवर को अपने सेवा क्षेत्र का न सिर्फ विशेषज्ञ होना चाहिए अपितु उसका ज्ञान अद्यतन होना चाहिए।
- उसे अपनी विशेषज्ञता के उपयोग में कुशल होना चाहिए।
- उसका सेवा शुल्क समाज में उसकी विशिष्ट माँग को देखते हुए नहीं बल्कि अपनी सम्मानजनक आजीविका हेतु होना चाहिए। पेशेवर व अन्य लोगों में आय का बहुत अधिक अन्तर सामाजिक विषमता और अन्याय को जन्म देता है।
- प्रत्येक पेशे की अपनी सीमाएँ हैं उसी के अनुरूप उसका उत्तरदायित्व है उसे अपने पेशे से सम्बन्धित सीमा क्षेत्र का अतिक्रमण नहीं करना चाहिए ।
- किसी भी पेशेवर व्यक्ति को सामान्य नैतिकता के नियमों से छूट उसी स्थिति में मिलती है जब सेवा क्षेत्र में ऐसी स्थिति अपरिहार्य हो।

शिक्षक समाज का एक सम्मानित वर्ग है परन्तु शिक्षकों के आचरण में अनेक बार ऐसी गिरावट के उदाहरण सामने आये हैं जो न सिर्फ इस पेशे की गरिमा गिराते हैं बल्कि हमारा सामाजिक जीवन खतरे में पड़ जाता है जैसे शिक्षक द्वारा दुष्कर्म की घटनाएँ, विद्यार्थियों के प्रति हिंसा की घटनाएँ, परीक्षा में मदद करने के नाम पर आर्थिक शोषण इत्यादि। शिक्षक का प्रभाव किसी भी विद्यार्थी के सम्पूर्ण व्यक्तित्व पर पड़ता है । किसी अन्य पेशे की आवश्यकता मानव समाज को विशिष्ट परिस्थिति में होती है और उस समय के गुजर जाने के बाद उसकी छाप धुंधली भी पड़ जाती है परन्तु शिक्षक के साथ ऐसा नहीं है क्योंकि शिक्षक भविष्य का निर्माता कहा जाता है। आजीविका प्राप्ति के लिए शिक्षक बनना सम्मानजनक है परन्तु शिक्षक बनकर दायित्व से कतराना शर्मनाक है। विद्यार्थी अपने शिक्षक के सिर्फ ज्ञान का अधिकारी ही नहीं होता बल्कि अज्ञान का भी अधिकारी बन जाता है इसलिए यथातथ्य पढ़ाना शिक्षक का दायित्व है। अपने अज्ञान को जाँचना शिक्षक की महती जिम्मेदारी है। यदि वह ऐसा नहीं करता तो विद्यार्थियों से अपने सम्मान की माँग नहीं कर सकता। शिक्षक दिवस विद्यालय-महाविद्यालय स्तर पर शिष्टाचार के औपचारिक कार्यक्रम बन गए हैं परन्तु जिस सम्मान को शिक्षक इस दिन प्राप्त करते हैं उनका अपने सम्मान के प्रति सजग होना आवश्यक है। आज विद्यार्थी-शिक्षक के सम्बन्ध परस्पर निर्भरता के नहीं रहे हैं। कोचिंग संस्थाओं के शिक्षक अपनी विशेषज्ञता यन्त्रवत उपलब्ध कराते हैं वह विद्यार्थियों से ज्यादा कोचिंग संस्थान के अनुबन्ध, लाभांश से अधिक जुड़े होते हैं। विद्यालयों-महाविद्यालयों के शिक्षक भी पेशेवर क्षेत्र में आते हैं। नियोक्ता संस्थान चाहे सरकारी हो या गैर सरकारी जो भी वित्तीय निर्भरता है पेशेवर क्षेत्र में उसके प्रति भी उत्तरदायित्व होता है इस दृष्टि से किसी भी शिक्षक वर्ग की पेशेवर नैतिकता समाज के शुभ के साथ राष्ट्रीय एकता अखण्डता की सुनिश्चिता से भी सम्बन्धित है।

शिक्षकों के सम्बन्ध में पेशेवर नैतिकता की चर्चा करते हुए बहुधा शिक्षक वर्ग ही इसे स्वयं के सम्मान के विपरीत मान लेता है परन्तु हमें इस सोच को बदलना होगा क्योंकि आज पेशेवरता स्वार्थ व लालच से नहीं कुशलता और उत्तरदायित्व से सम्बन्धित हैं। विद्यालयों, महाविद्यालयों और विश्वविद्यालयों के कार्य-निष्पादन के नये मानक आ चुके हैं। कार्पोरेट क्षेत्रों में भी सामाजिक उत्तरदायित्व आवश्यक कर्तव्य के रूप में जुड़ गया है । प्रत्येक कार्य करने का ढँग बेहतर प्रबन्धन और तकनीक से जुड़ गया है। आज के बच्चे और युवा सामाजिक मूल्यों के पालन में धर्म और आस्था से ज्यादा तार्किक माँग के साथ समानता एवं पारदर्शिता चाहते हैं। वर्तमान में शिक्षक मित्रवत होना चाहिए। भय आधारित अनुशासन का कोई स्थान नहीं है। सूचनाएँ विद्यार्थियों को भी उपलब्ध हैं वे शिक्षक से इन सूचनाओं के उपयोग, विश्लेषण और भविष्य के प्रति इनके अर्थों को समझना चाहते हैं। विद्यार्थियों की यह माँग पूरी करना शिक्षकों की पेशेवर नैतिकता का क्षेत्र है। शिक्षा एक विशिष्ट पेशेवर क्षेत्र है इसकी गरिमा और सम्मान को अन्य पेशों के बराबर मानने में यदि कहीं अपमान महसूस होता है तो भी हम इस बात से इन्कार नहीं कर सकते कि विशिष्टता की यदि हम माँग करते हैं तो इसके हकदार हम तभी होंगे जब नैतिकता की दृष्टि से शिक्षक अन्य पेशों की नैतिकता के लिये भी अनुकरणीय होंगे। विशिष्टता का हकदार वही होता है जो उच्च नैतिक मूल्यों से जीवन का संचालन करता है। सम्मान मात्र कर्त्तव्यपालन के लिये नहीं होता उसके लिए उत्कृष्ट प्रदर्शन की आवश्यकता होती है। ❑

(सह आचार्य दर्शनशास्त्र, सम्राट पृथ्वीराज चौहान राजकीय महाविद्यालय, अजमेर।)

गुरु सम्मान के आचरणीय निहितार्थ

❑ डॉ. ओमप्रकाश पारीक

वस्तुतः ज्ञान ही कर्म को आदर्श और उत्कृष्ट दिशा देता है, ज्ञान के प्रकाश में किये गये कर्मों से व्यक्तित्त्व और चरित्र निर्माण होता है और ऐसे आदर्श चरित्र अपनी शिक्षा द्वारा समाज व राष्ट्र का दिशा-निर्देश करते हैं। आज हमारी शिक्षा में इस प्रकार के ज्ञान एवं आचरण के आदर्श गुरुओं का सम्मान करते रहने से समाज स्वयं सम्मानित होता है और राष्ट्र का अभ्युदय होता है। अतः हमारे व्यवहार की प्रत्येक अभिव्यक्ति से गुरु के प्रति आदर व सम्मान भाव प्रदर्शित होना चाहिये, जो कि शिक्षा में आवश्यक है।

आदि काल से ही मनुष्य की मनुष्यता स्थापित रखने एवं जीवन के उच्च उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु गुरु के सानिध्य का महत्त्व रहा है। गुरु के बताये मार्ग पर चलकर मनुष्य गोविन्द के भी दर्शन करता है अत: गुरु को गोविन्द से भी अधिक पूजनीय स्वीकार किया गया। गुरु शब्द में ही गुरु के प्रति अपार सम्मान भाव भरा हुआ है, गुरु सर्वदैव वंदनीय और पूजनीय है। हमारी संस्कृति में गुरु पर शब्द के अन्तर्गत व्यापक विचार किया गया है इसके अनुसार पिता-पितामह, माता, नानी तथा अन्य जो भी हमारे से ज्येष्ठ हैं वे सब भी हमारे गुरु हैं वास्तव में वे हमारा पल-पल पर मार्गदर्शन करते हैं जिससे हम जीवन को सार्थक बनाते हैं।

प्राचीन काल में ऋषियों ने जो तत्त्वदर्शन किया उस तत्त्व ज्ञान का लाभ सभी को हो एतदर्थ वैदिक संहिता, ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषद् आदि साहित्य की रचना हुयी। तत्त्वदृष्टा ऋषियों ने जीव-जगत्, प्रकृत्ति-ब्रह्म के यथार्थ स्वरूप को अपनी उत्तम मेधा से अनुभव किया जो कि मानव जीवन हेतु सर्वदा कल्याणकारी ज्ञान है। उक्त कालजयी ज्ञान को अन्य जिज्ञासु, ज्ञान पिपासुओं को प्रदान करना अत्यन्त महत्त्वपूर्ण था, अत: गुरुपरम्परा विकसित हुयी। शिष्य को पुरुषार्थ चतुष्टय की प्राप्ति करवाने वाले गुरु, ईश्वर से भी बढ़कर माने गये। गुरु के सानिध्य में रहता हुआ शिष्य अपने ब्रह्मचर्याश्रम में विद्याग्रहण कर समावर्तन संस्कार के पश्चात् समाज में जाकर समाज को अपने ज्ञान एवं आचरण द्वारा सार्थक दिशा निर्देश करता था।

स्मृति काल में गुरु सम्मान शिष्य के लिये एवं समाज के लिये आचरण का एक अंग माना गया। धर्म शास्त्र में गुरु के प्रति शिष्य के आचरण का विस्तृत वर्णन है।

गुरुकुल में गुरु सानिध्य में रहते हुये ब्रह्ममहुर्त से उठने से लेकर रात को शयन तक शिष्य को गुरु के समक्ष आचरण किस प्रकार करना चाहिये यह सब सिखाया जाता था। यही आचरण शिष्य के समाज में भावी जीवन की सार्थकता का आधार होता था। शिष्य गुरु में परमात्मा तुल्य श्रद्धा भाव से अपने मन-वचन और कर्म से गुरु के द्वारा निर्दिष्ट मार्ग पर चलता था उसके सम्पूर्ण कार्य-कलाप में प्रतिक्षण गुरु के प्रति श्रद्धा व सम्मान झलकता था।

धर्म शास्त्र में गुरु के अभिवादन की भी विधि बतलायी गयी है। शिष्य अपने दाहिने हाथ से गुरु के बायें पैर तथा बायें हाथ से दाहिने पैर को छूते हुये उनको प्रणाम करें। शिष्य के विशिष्ट आचरण भी बताये गये हैं जो गुरु सम्मान व गरिमा की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है। अध्ययन के प्रारम्भ और अन्त में इसी प्रकार गुरु के चरण स्पर्श करने

का विधान था। चरण-स्पर्श का बहुत महत्त्व था। यह चरण-स्पर्श 'व्यत्यस्त पाणि' कहा जाता था। इसमें शिष्य की गुरु के प्रति अगाध श्रद्धा समन्वित सम्मान का भाव अभिव्यक्त होता था। गुरु के द्वारा शिष्य के अध्यापन के समय इस प्रकार की अन्त:प्रक्रिया चलती थी कि बीच में किसी भी प्रकार का यदि व्यवधान हो जाये तो पुन: शिष्य द्वारा चरण स्पर्श कर अध्ययन-अध्यापन को सुचारू किया जाता था। गुरु के समक्ष शिष्य के द्वारा की जाने वाली बहुत सी शारीरिक चेष्टायें पूर्णत: वर्जित थी। जिनसे गुरु द्वारा दिये जाने वाले ज्ञान-प्रवाह किसी भी प्रकार की महत्त्वहीनता प्रदर्शित हो। यथा गुरु की ओर पैर करके बैठना, दीवार या खम्भ आदि का सहारा लेकर बैठना, पैर फैलाना, खँखारना, अकारण हँसना, अंगडाई लेना, अँगुलियाँ चटकाना इन चेष्टाओं से गुरु के सामने शिष्य की एकाग्रता न होने का संदेह होता था। अत: इनका पूर्णत: निषेध था और ऐसा न करने से गुरु के प्रति आदर भाव भी प्रदर्शित होता था। गुरु का सम्मान ही सर्वोपरि होता था।

इसी प्रकार शिष्य के गुरु की शय्या से नीची शय्या पर सोने, गुरु के आसन की अपेक्षा नीचे आसन पर बैठने, गुरु के जगने से पहले उठने तथा गुरु के सोने के बाद सोने का धर्मशास्त्रीय विधान था। गुरु की आज्ञा अर्थात् आदेश देने पर अपनी शय्या और अपने स्थान से तुरन्त उठकर जवाब देने। यदि गुरु दिखलाई न पड़े और कुछ दूर से आवाज देकर कह रहे हों तो शिष्य का कर्त्तव्य था कि वह दूर से जोर से आवाज न देकर गुरु के समीप जाकर वार्तालाप करें। गुरु के चलने पर अनुगमन करें। जो कुछ किया उसका और जो कुछ आगे करना है उसके बारे में गुरु को निवेदन करने का विधान था। इस प्रकार हमारे धर्मशास्त्रों में शिष्य के गुरु के समक्ष आचरणों में गुरुश्रद्धा व सम्मान भरा था। गुरु का सम्मान धर्मशास्त्र में इतना बताया गया है कि यदि राजा रथ पर चढ़कर जा रहे हैं और सामने से कोई वेद ज्ञाता आचार्य आ रहा है तो राजा को उसे सम्मान देते हुये रास्ता देना चाहिये।

उक्त धर्मशास्त्रीय विधान गुरु की महत्ता के कारण आचरणीय कर्तव्य माने जाते थे। वस्तुत: इस संसार में ज्ञान से पवित्र कुछ भी नहीं है ऐसा भगवान कृष्ण ने भी गीता में कहा है उक्त ज्ञान का दाता गुरु ही होता है। अत: गुरु से बढ़कर कोई नहीं है। भारतीय सांस्कृतिक इतिहास में राजा और गुरु दोनों को ही समाज में प्रमुख स्थान प्राप्त है पर इसमें भी गुरु की राजा से श्रेष्ठता स्वीकृत है। जब राजा दुष्यन्त शिकार खेलते हुये हरिण के पीछे-पीछे महर्षि कण्व के आश्रम की सीमा में पहुँच जाते हैं तो अरे यह तो आश्रम का मृग है, इसे नहीं मारना चाहिये इस प्रकार गुरु के आश्रम में रहने वाले वृक्ष-लता-पशु-पक्षी सभी आदरणीय बन जाते हैं। इतना ही नहीं शिकार का विनोदी मन होने पर भी राजा गुरु आचार्य कण्व के दर्शन करना अपरिहार्य ही नहीं सौभाग्य मानते हैं। गुरु एवं आचार्य श्रेष्ठ हैं तो व्यवहार भी तदनुरूप ही होना चाहिये इसलिये चक्रवर्ती सम्राट दुष्यन्त कहते हैं 'आचार्य के समीप विनीत वेष में प्रवेश करना चाहिये' अत: अपने मुकुट, आभूषण राजकीय चिह्न यहीं उतार देता हूँ। ऐसा करते हुये राजा एक सामान्य जन की भाँति गुरु के समक्ष जाते हैं। हमारी संस्कृति में इस प्रकार का गुरु सम्मान भरा हो कि चक्रवर्ती सम्राट आचार्य कण्व के समक्ष साधारण व्यक्ति बनकर नतमस्तक होते हैं। जो व्यक्ति मान्य की अवमानना करते हैं पूज्य की पूजा नहीं करते वे घोर संकट में पड़ते एक बार जब राजा दिलीप इन्द्र की सहायता कर स्वर्ग से पृथ्वी पर लौट रहे थे, तब मार्ग में कल्पवृक्ष की छाया में कामधेनु विश्राम कर रही थी उस समय राजा कामधेनु पर ध्यान नहीं देते हैं और आगे बढ़ जाते हैं इसके स्थान पर राजा को गाय की प्रदक्षिणा और पूजा कर आगे बढ़ना चाहिये था, इससे कामधेनु गाय की अवमानना से राजा के कोई सन्तति नहीं हुयी, राजा दिलीप अपने गुरु वशिष्ठ जी से जब इसका कारण पूछते हैं तो गुरु ही राजा दिलीप के संकट का निवारण कर उसे मान्य की अवमानना करने के प्रायश्चित स्वरूप कामधेनु की पुत्री नन्दिनी की सेवा करने का उपाय बताते हैं। राजा दिलीप गुरु की आज्ञा से नन्दिनी की सेवा करते रहे, नन्दिनी ने अपनी सेवा की परीक्षा लेकर उसमें सफल राजा को सन्तति का वरदान दिया। इस प्रकार राजा दिलीप संकट से ग्रस्त होने पर गुरु की ही शरण में गये और गुरु ने ही उन्हें सन्तति न चलने के महान संकट से उभारा, इससे यह स्पष्ट ही होता है कि ज्ञानदाता गुरु का स्थान सर्वदा सर्वोत्कृष्ट एवं सम्माननीय है।

इस प्रकार चाहे हम वैदिक ऋषि जिन्होंने स्वयं तत्त्व साक्षात्कार करके समाज को पवित्र वैदिक ज्ञान से उपकृत किया हो या तदनन्तर अनवरत चलने वाली भारतीय ज्ञान परम्परा में गुरुकुलों में विद्याध्ययन करवाने वाले आचार्य हों, राजकुलों के दिशा-निर्देशक एवं समाज व राष्ट्र के रक्षक राजगुरु हों गुरु के रूप में विचार करें। सबका सम्मान समाज में सर्वोत्कृष्ट रहा है। जिसका कारण उनका तपोनिष्ठ, ज्ञानपूर्ण, श्रम साध्य समाज कल्याणक जीवन रहा है। अत: स्वाभाविक ही समाज व शिष्यों के हृदय एवं चेष्टाओं में उनके प्रति सर्वदैव सम्मान भरा हुआ रहा है।

वस्तुत: ज्ञान ही कर्म को आदर्श और उत्कृष्ट दिशा देता है, ज्ञान के प्रकाश में किये गये कर्मों से व्यक्तित्त्व और चरित्र निर्माण होता है और ऐसे आदर्श चरित्र अपनी शिक्षा द्वारा समाज व राष्ट्र का दिशा-निर्देश करते हैं। आज हमारी शिक्षा में इस प्रकार के ज्ञान एवं आचरण के आदर्श गुरुओं का सम्मान करते रहने से समाज स्वयं सम्मानित होता है और राष्ट्र का अभ्युदय होता है। अत: हमारे व्यवहार की प्रत्येक अभिव्यक्ति से गुरु के प्रति आदर व सम्मान भाव प्रदर्शित होना चाहिये, जो कि शिक्षा में आवश्यक है। ❑

(सहायक निदेशक, आयुक्तालय, कॉलेज शिक्षा, जयपुर, राजस्थान)

डॉ. राधाकृष्णन् का शैक्षिक दर्शन

शिक्षा का उद्देश्य सिर्फ सूचनाओं का एकत्रीकरण व सम्प्रेषण मात्र ही नहीं है वरन उसका समुचित उपयोग, प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण व सम्वर्द्धन हेतु होना चाहिये। बौद्धिक उपलब्धि से अधिक नैतिक मूल्यों पर आधारित शिक्षा प्रणाली व व्यवस्था होनी चाहिये। इसका उल्लेख उन्होंने विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग (1948-49) जो भारत में उच्च शिक्षा के योजनागत विकास के उद्देश्य को लेकर गठित किया गया था, उसमें भी किया है। उन्होंने विश्वविद्यालयों में शोध व नवाचारों के विकास पर बल दिया, उसके अनुसार प्रशिक्षित शोधार्थी की एक फौज देश में होनी चाहिये (राधाकृष्णन शिक्षा आयोग, पृष्ठ-124) साथ ही देश का नैतिक व भौतिक विकास होना चाहिये। शिक्षक हमारी परम्पराओं व धरोहरों का वाहक होता है, उसी के द्वारा समाज में नैतिक मूल्यों का सम्प्रेषण होता है।

❑ **प्रो. मधुर मोहन रंगा**

किसी भी राष्ट्र का शिक्षा तंत्र उसके संविधान की तरह उसकी आत्मा का प्रतिनिधित्त्व करता है। शिक्षा राष्ट्र के समग्र विकास का वाहक होता है, इसी कारण विभिन्न योजनाओं नीतियों, दृष्टि पत्रों, परियोजनाओं व शिक्षा के दर्शन की आवश्यकता होती है स्वाधीनता के बाद देश के शैक्षणिक उन्नयन के योजनागत विकास के द्वारा विभिन्न आयोगों का गठन किया गया। सभी ने सुझाव दिये, परन्तु समग्र विकास एक सतत् प्रक्रिया है अत: समय-समय पर नीतियों की समीक्षा व मूल्यांकन कर समयानुकूल समग्र नीति की आवश्यकता होती है इसी सन्दर्भ में प्रति वर्ष 5 सितम्बर को शिक्षक दिवस के अवसर पर सर्वपल्ली डॉ. राधाकृष्णन् के शैक्षिक-दर्शन की प्रासंगिकता हो जाती है। राधाकृष्णन् के अनुसार शिक्षा, सामाजिक, आर्थिक व सांस्कृतिक परिवर्तन का माध्यम है, सामाजिक व राष्ट्रीय एकीकरण हेतु शिक्षा का समुचित उपयोग होना चाहिये, उत्पादकता वृद्धि का माध्यम भी शिक्षा होना चाहिये, शिक्षा का महत्त्व सिर्फ ज्ञान की अभिवृद्धि व कौशल विकास तक ही सीमित नहीं होना चाहिये वरन् सभी के साथ रहने का समभाव भी होना चाहिये। शिक्षा, सिर्फ तकनीकी देने तक ही सीमित नहीं होनी चाहिये, बल्कि वह सफलतापूर्वक जीवन यापन में सहायक हो तथा स्थायी मूल्यों (lasting values) की खोज में हमारी मदद करें।

राधाकृष्णन के शिक्षा संबंधी विचार सिर्फ आदर्शवादी दर्शन पर ही निर्भर नहीं थे, अपितु व्यावहारिकतावादी-दर्शन (Pragmatic Philosophy) से भी प्रभावित हैं। आदर्शवाद एक आध्यात्मिक दर्शन समूह है, जो वास्तविकता पर केन्द्रित है, जो मानव के संज्ञान में है, यह मानसिक व मानसिक रूप से निर्माण की गई है, यह भौतिक नहीं है यह ब्रह्माण्ड की तत्त्वमीमांसा (Metaphysis) को भी इंगित करता है, इसमें ब्रह्माण्ड के मूल तत्त्व की विवेचना होती है। ज्ञानमीमांसा (Epistemology) के अनुसार, आदर्शवाद सम्भावनाओं की जानकारी के प्रति संदेहवाद (Skepticism) को भी प्रकट करता है। व्यावहारिक दर्शन (Pragmatic Philosophy) से भी राधाकृष्णन् का शैक्षिक दर्शन प्रभावित था। उन्होंने विज्ञान व मानविकी के समन्वय पर बल दिया, उनके अनुसार विज्ञान आधुनिक सुख-सुविधाओं व भौतिक प्रगति का वाहक हो सकता है परन्तु आध्यात्मिक चिंतन के अनुसार विज्ञान पर मानविकी विषयों का नियंत्रण होना चाहिये। मानविकी विषय माननीय संवेदनाओं से अधिक प्रभावित होता है अत: विज्ञान की अमर्यादित उन्नति पर मानविकी दृष्टिकोण से नियंत्रण किया जा सकता है अत: राधाकृष्ण के दर्शन को विज्ञान- मीमांसा कहा जा सकता है। आदर्शवादी दर्शन नैतिकता-सापेक्ष है, जबकि व्यावहारिक दर्शन स्थिति-सापेक्ष होता है अत: दोनों दर्शनों का परिस्थितियों के अनुसार महत्त्व होता है। उचित प्रकार की शिक्षा समाज व राष्ट्र की समस्याओं का हल कर सकती हैं।

शिक्षा के द्वारा अदृश्य व वास्तविक विश्व का ज्ञान सम्भव है, जो अंतरिक्ष से परे ही क्यों न हो शिक्षा के द्वारा हमें दूसरा जन्म मिलता है जो मानव में उपस्थित वास्तविक ज्ञान का आभास कराता है। शिक्षा, बंधन मुक्त करने का साधन होना चाहिये न कि किसी के प्रति आसक्ति से उदासीन हो। मानसिक, शारीरिक, बौद्धिक व आध्यात्मिक परिपूर्णता की प्राप्ति शिक्षा के द्वारा ही हो सकती है अत: मानव में अन्तर्निहित ज्ञान के प्रगटीकरण के साथ-साथ उसे सम्पूर्णता की ओर ले जाना है, मानव के भीतर निहित पूर्णता का विकास होने से जिज्ञासा उत्पन्न होती है, यही सृजनात्मक शक्ति का आधार होता, जो सुसुप्तावस्था में होती है। उचित शिक्षा के द्वारा विचारों का उदय व प्रवाह होता है, तर्क शक्ति का विकास होकर नवाचारों का जन्म होता है, नवाचार परिष्कृत होकर, नवीन विचारों को जन्म देता है, राधाकृष्णन् के अनुसार बालकों में जन्मजात मेधा होती है, हमें उसे पहचानना होगा व उसी मेधा को पूर्णता तक ले जाना ही शिक्षा है, शिक्षा, आर्थिक समृद्धि का आधार हो सकता है जबकि विद्या,

नैतिक समृद्धि का वाहक होता है शिक्षा, विद्यार्थियों के मस्तिष्क में निरन्तर सोच (Sustained thinking) विकसित करने वाली होनी चाहिये, वह सत्य का साक्षात्कार करने के साथ लोकप्रिय भावनाओं व भीड़ जुनून (mob passion) का प्रतिरोध करने की क्षमता से भी जुड़ी होनी चाहिये ज्ञान, सिर्फ अर्जित करने के उद्देश्य से ही नहीं होना चाहिये वरन उसका व्यावहारिक उपयोग समग्र कल्याण में होना चाहिये अर्थात् प्रयोगशाला में अर्जित ज्ञान का उपयोग फील्ड मे होना चाहिये तत्पश्चात् परीक्षणों से प्राप्त परिणाम के आधार पर पुनः प्रयोगशाला में उसका परिमार्जन होना चाहिये। शिक्षा स्वयं के अभ्युदय (Self-aggrandizemant) व स्वयं के हित (Self - interest) के अनुसार न होकर प्राकृतिक विकास व समृद्धि के लिए होनी चाहिये। अतः समग्र व समष्टि के कल्याण का भाव उनके दर्शन में निहित है। जिसमें सार्वभौमिक स्नेह (universal love) मानवतावादी दृष्टिकोण, पारस्परिक सहायता, त्याग व सहयोग के भाव का अध्यंकन है।

शिक्षा का उद्देश्य सिर्फ सूचनाओं का एकत्रीकरण व सम्प्रेषण मात्र ही नहीं है वरन उसका समुचित उपयोग, प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण व सम्वर्द्धन हेतु होना चाहिये। बौद्धिक उपलब्धि से अधिक नैतिक मूल्यों पर आधारित शिक्षा प्रणाली व व्यवस्था होनी चाहिये। इसका उल्लेख उन्होंने विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग (1948-49) जो भारत में उच्च शिक्षा के योजनागत विकास के उद्देश्य को लेकर गठित किया गया था, उसमें भी किया है। उन्होंने विश्वविद्यालयों में शोध व नवाचारों के विकास पर बल दिया, उसके अनुसार प्रशिक्षित शोधार्थी की एक फौज देश में होनी चाहिये (राधाकृष्णन शिक्षा आयोग, पृष्ठ-124) साथ ही देश का नैतिक व भौतिक विकास होना चाहिये। शिक्षक हमारी परम्पराओं व धरोहरों का वाहक होता है, उसी के द्वारा समाज में नैतिक मूल्यों का सम्प्रेषण होता है। उन्होंने शिक्षा को सामाजिक, सांस्कृतिक व आर्थिक रूपान्तरण का उपकरण बताते हुए, आधुनिकता के साथ नैतिक मूल्यों के सम्वर्द्धन, सम्प्रेषण व प्रक्षेपण पर बल दिया। शिक्षा प्रक्रिया के द्वारा विद्यार्थी का सर्वांगीण विकास होना चाहिये उनका शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक व आध्यात्मिक विकास होने से ही उनका सन्तुलित व्यक्तित्व उभर कर सामने आयेगा। शिक्षा में मानवतावादी दृष्टिकोण, वैज्ञानिक भावना का विकास, मानवीय संवेदनाओं के साथ मानवीय मूल्यों का समावेश, राष्ट्रीय समन्वय व एकीकरण का भाव, लोकतांत्रिक मूल्यों का सम्वर्द्धन, स्व-केन्द्रित अनुशासन, महिला शिक्षा को प्रोत्साहन आदि विषयों के संबंध में उन्होंने अवसरोचित भाषण व लेखन (occassional speeches and writings, 1956) के दौरान विचार व्यक्त किये। उपरोक्त विषय वस्तु उनकी शिक्षा अवधारणा व शिक्षा कार्यप्रणाली को इंगित करती है। शिक्षा के उद्देश्यों के संबंध उन्होंने व्यक्तित्त्व विकास, चरित्र निर्माण, संस्कृति का संरक्षण, सम्प्रेषण व समृद्धि, आध्यात्मिक मूल्यों का विकास, राष्ट्रीय समन्वय, व्यावसायिक दक्षता का विकास, अंतरराष्ट्रीय समझ वैज्ञानिक दृष्टिकोण के विकास को समावेशी शिक्षा दर्शन के रूप में रखा। उल्लेखनीय है कि व्यावसायिक दक्षता से तात्पर्य कौशल विकास ही है, यह आज की नई शिक्षा नीति का भाग है। पाठ्यक्रम के संबंध में उन्होंने कहा कि यह मानवीय संवेदनाओं से सम्बंधित होनी चाहिये, विद्यार्थी विभिन्न विषयों का अध्ययन करे जैसे भाषा, साहित्य, सामाजिक अध्ययन, दर्शन शास्त्र, विज्ञान आदि के अतिरिक्त योग शिक्षा, शारीरिक शिक्षा व धर्म-शिक्षा आदि को पाठ्यक्रम में सम्मिलित करना चाहिये। उल्लेखनीय है कि विश्वविद्यालय आयोग ने विकल्प आधारित क्रेडिट प्रणाली (Choice Based credit System) को अनिवार्य रूप से लागू करने का देश के सभी विश्वविद्यालयों को लिखा है। जबकि राधाकृष्णन् ने आयोग की सिफारिशों में इसे जोड़ा था।

इसी प्रकार योग शिक्षा आजकल विश्वविद्यालयी पाठ्यक्रमों में सम्मिलित है। उन्होंने त्रिभाषा सिद्धांत भी दिया जिसे 1986 की शिक्षा नीति में भी शामिल किया गया था उनके अनुसार मातृभाषा, क्षेत्रीय भाषा, संघीय भाषा हिन्दी व अंग्रेजी, (योजक) भाषा के रूप में होनी चाहिये। उन्होंने संस्कृत के अध्ययन पर बल देते हुए कहा कि संस्कृत के द्वारा भारतीय संस्कृति का ज्ञान होगा साथ ही वेद, उपनिषद् व अन्य धार्मिक ग्रंथों को पढ़ने में मदद मिलेगी उन्होंने मातृभाषा को प्राथमिक स्तर पर पढ़ाई के माध्यम के रूप में स्वीकारने पर बल दिया क्योंकि बालकों में जन्मजात मेधा के परिमार्जन में मातृभाषा सहायक होती है, यह परिवार में बोली जाने वाली भाषा होने के कारण बालकों में उसका अध्यंकन (Imprinting) होता रहता है, यही उसके व्यक्तित्व विकास का आधार बनती है। बौद्धिक विकास हेतु इतिहास, भूगोल, अर्थव्यवस्था व भारतीय दर्शन के अध्ययन का सुझाव दिया। उन्होंने विज्ञान व मानविकी विषयों के समन्वय पर बल दिया, विज्ञान भौतिक विकास का वाहक होता है, आधुनिक सुख-सुविधाओं का विकास होता है परन्तु विज्ञान पर मानविकी विषयों का नियंत्रण होना चाहिये। वस्तुतः अत्यधिक पाश्चात्य सोच के प्रभाव के कारण मानवीय संवेदनाओं पर प्रहार हो रहा है, मानविकी विषय का विज्ञान के साथ समन्वय होने से भावनाओं का पक्ष मजबूत होता है व विज्ञान मानव कल्याण के पथ पर अग्रसर होता है। उन्होंने धार्मिक शिक्षा, आध्यात्मिक शिक्षा, व्यावसायिक व महिला शिक्षा को पाठ्यक्रम में शामिल करने का आग्रह किया। अधिगम के संबंध में उन्होंने कहा कि हमें क्या पढ़ाना है ? कैसे पढ़ाना है ? यह महत्त्वपूर्ण है, इस नाते उपर्युक्त राधाकृष्णन का शैक्षिक दर्शन आज भी प्रासंगिक है परन्तु उसके महत्त्वपूर्ण बिन्दुओं का आजतक पाठ्यक्रमों में समावेश तो किया गया है परन्तु सभी सुझावों का क्रियान्वयन अभी भी शेष है। ❑

(विभागाध्यक्ष-पर्यावरण विज्ञान विभाग, सरगुजा विश्वविद्यालय, अम्बिकापुर, छ.ग.)

वर्तमान शिक्षा-व्यवस्था और शिक्षक

किसी भी राष्ट्र का विकास उस राष्ट्र की 'मानवीय संपदा' की गुणवत्ता और 'शिक्षकों की गुणवत्ता' पर निर्भर करता है। नियम-अधिनियम किसी समस्या के एक सीमा तक प्रभावित कर सकते हैं, परन्तु सम्पूर्ण परिवर्तन और दीर्घकालिक समाधान के लिए व्यक्ति और समाज के दृष्टिकोण में परिवर्तन आवश्यक होता है जो शिक्षा और शिक्षकों द्वारा किया जाना संभव हो सकता है। शिक्षक से राष्ट्र और समाज को बहुत अपेक्षाएँ रहती हैं परन्तु लगातार बढ़ती इन अपेक्षाओं और उत्तरदायित्वों के बीच में शिक्षक अपना रास्ता तभी खोज सकता है जब उसे अपना कार्य सुचारू रूप से करने की स्वतंत्रता और व्यवस्था दी जाए। उसे राष्ट्र और समाज द्वारा उचित सम्मान मिले।

❑ **सुमनबाला**

हमारे देश की प्राचीनता, दार्शनिकता और आध्यात्मिकता को विश्व भर में स्वीकार किया जाता है। इस देश की संस्कृति का भी विश्व में अपना एक अहम् स्थान है और आज भी भारतवर्ष की छवि आध्यात्मिक गुरु के रूप में स्वीकार की जाती है। भारतीय संस्कृति और साहित्य में 'गुरु' की महत्ता तथा आवश्यकता का जितना उल्लेख किया गया है उतना अन्य किसी देश के साहित्य और संस्कृति में नहीं मिलता है। वेद, उपनिषद् तथा परवर्ती साहित्य ने एकमत से गुरु की महत्ता को स्वीकार किया है और गुरु के प्रति अपार श्रद्धा व्यक्त करने के लिए उसका गुणगान भी किया है। गुरु के प्रति श्रद्धा व्यक्त करने के लिये 'गुरु पूर्णिमा' 'व्यास पूजा' आदि विभिन्न नाम देकर विशेष दिवस भी निर्धारित किये गये हैं। वर्तमान में इन दिवसों के साथ 5 सितम्बर का दिन हम शिक्षक दिवस के रूप में मनाते हैं। डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन् के जन्म दिवस को शिक्षक दिवस के रूप में मनाकर हम भारत के इस महान शिक्षक को सच्ची श्रद्धांजलि दे पाते हैं या नहीं इसका विश्लेषण करना आवश्यक है। शिक्षक दिवस मनाने का औचित्य केवल दीप प्रज्वलित कर, शिक्षक का माल्यार्पण कर सांस्कृतिक कार्यक्रम आयोजित करने में नहीं अपितु डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन् के व्यक्तित्व में निहित एक आदर्श शिक्षक के गुणों को आत्मसात् करने में है और तभी यह देश और समाज शिक्षक को प्राचीन गुरु के समान सम्मान दे सकेगा। वर्तमान शिक्षक और प्राचीन गुरु के स्थान पर दृष्टिपात करने से पहले हमें गुरु के अर्थ को समझना चाहिये।

गुरु शब्द में 'गु' का अर्थ अंधकार तथा 'रु' का अर्थ है रोकने वाला। अंधकार को रोकने अर्थात् दूर करने वाला व्यक्ति ही गुरु बनने और कहलाने में सक्षम है। हमारे ग्रन्थों में भी गुरु के लक्षणों के विषय में वर्णन मिलता है। 'अद्धयतारकोपनिषद्' में गुरु के अर्थ को इस प्रकार व्यक्त किया गया है - वेदादि से सम्पन्न आचार्य, विष्णु-भक्त, मत्सरतारहित, योग-ज्ञाता, योग-निष्ठा वाला, योग्यात्मा, पवित्र, गुरु-भक्त, परमात्मा में विशेष रूप से लीन इन लक्षणों से युक्त व्यक्ति को ही गुरु कहा जाता है अर्थात् गुरु शब्द में गुण सम्पन्नता व्याप्त है। गुरु में गुरुता, महत्त्व, पवित्र आत्मा, असाधारण योग्यता सभी कुछ द्रष्टव्य होता है। ऋषि जाबाल के गुणों का उल्लेख इस प्रकार किया गया है ''यह मुनि तेजों में अग्रणी, करुण रस का प्रवाह, संसार रूपी समुद्र से पार ले जाने वाला, संतोष का सागर, सिद्धि मार्ग प्रदर्शक, अशुभ ग्रहों को शांतिकर्ता, प्रज्ञा का चक्र, धर्म की ध्वजा, आसक्ति-रूपी पल्लवों के

लिए दावानल, क्रोध रहित, नरक द्वारों के बन्धन से मुक्ति दाता, अभिमान-रहित तथा सुखों से पराङ्मुख है।'' उपर्युक्त गुणों और लक्षणों को धारण करने वाला गुरु ही साधारण व्यक्तियों को अज्ञानान्धकार से प्रकाश की ओर ले जाता है।

गुरु के लक्षणों के साथ ही शिष्य के गुण-लक्षणों के विषय में कहा गया है कि **'शिष्यस्तेऽहं शाधि मां त्वां प्रपन्नम्।'** अर्थात् मैं आपका शिष्य हूँ अत: आपकी शरण में मुझको शिक्षा दीजिये। वास्तव में जो पूर्णतया गुरु की शरण में समर्पित हो जाए वह शिष्य है। 'सत्यार्थ-प्रकाश' में कहा गया है कि शिष्य वही है जो सत्य, विद्या और शिक्षा को ग्रहण करने वाला, योग्य, धर्मात्मा, विद्याग्रहण की इच्छा रखने वाला तथा आचार्य का प्रिय होता है। ''नारद पुराण' में शिष्य की तल्लीनता के विषय में कहा गया है कि-

''जो विद्या की चाहना रखने वाला है और विद्या प्राप्त करना ही जिसके जीवन का एकमात्र प्रयोजन होता है वह एक गरुड़ पक्षी हँस के समान समुद्र में भी चला जाता है, शिष्य शब्द अपने में पूर्ण है जो वास्तविक रूप से गुरु शिष्य संबंध को उद्घाटित करता है।'' भारतीय ज्ञान परम्परा के क्षेत्र में ज्ञाता, ज्ञेय, ज्ञान और शब्द का महत्त्वपूर्ण स्थान है। ज्ञाता गुरु है और शिष्य ज्ञेय तथा ज्ञान को प्राप्त करने वाला है। गुरु का ज्ञान बिना शिष्य के अस्तित्व के सुरक्षित तथा हस्तांतरित नहीं हो सकता अर्थात गुरु शब्द के साथ-साथ शिष्य शब्द स्वत: ही आ जाता है। वैदिक ग्रन्थों, महाकाव्यों, नाटकों, नीतिकाव्यों तथा हमारे साहित्य आदि में गुरु शिष्य परम्परा का उल्लेख मिलता है। हमारी भारतीय वैदिक संस्कृति के अनुसार गुरु माता-पिता तुल्य तथा शिष्य पुत्र/पुत्री तुल्य व्यवहार करता है।

वर्तमान काल में गुरु-शिष्य के स्थान पर शिक्षक-विद्यार्थी है और हम इस शिक्षक-विद्यार्थी संबंधों का विश्लेषण करें तो इसकी छवि कुछ विकृत दिखायी देती है। वर्तमान में आधुनिक बनने की होड़ में युवा विद्यार्थी द्वारा अपने शिक्षकों की आज्ञा का उल्लंघन और उनकी उपेक्षा करना आम बात है। विद्यार्थियों में जो उच्छृंखलता, निराशा, भग्नाशा, अवहेलना, कर्तव्य की उपेक्षा, अहंकार आदि दृष्टिगोचर होते हैं, ये अवगुण हमारी भारतीय संस्कृति के अनुरूप कदापि नहीं हैं। लोकतंत्रीय भारत में स्वाधीनता का अर्थ सही रूप में न समझने से आज का विद्यार्थी कर्तव्यविमूढ़ सा बन गया है। प्रत्येक विद्यार्थी में प्रेम, त्याग, सेवा, अहंकारशून्यता आदि गुणों का होना आवश्यक है जिसका आज अभाव दिखाई देता है।

गुरु शिष्य के आपसी विश्वास और प्रेम की जो परम्परा कभी हमारी संस्कृति का अभिन्न और महत्त्वपूर्ण अंग रही थी वह आज लुप्त प्राय: हो गई है। इस आपसी स्नेह-सूझ के अभाव में आज का विद्यार्थी निरन्तर पथभ्रष्ट होकर ज्ञान शून्य, निर्देशन-मार्गदर्शन रहित तथा अंधकार की ओर अग्रसर है। शिक्षक अपने कर्तव्य का निर्वाह सही प्रकार करते हुए दिखाई नहीं देते हैं। शिक्षण-कार्य एक व्यवसाय मात्र होकर रह गया है। इस व्यावसायीकरण का प्रभाव गुरु-शिष्य संबंधों के ऊपर पड़ा है। आज का शिक्षक भी अत्याधुनिक जीवन शैली में कदम से कदम मिलाकर चलने की आपाधापी में किसी हद तक कर्तव्यविमूढ़ सा हो गया है। प्राचीन गुरु के गुणों का अभाव आज के शिक्षक में स्पष्ट नजर आने लगा है।

हमारी प्राचीन आश्रम व्यवस्था में जहाँ एक गुरु की भूमिका पूर्ण रूप से शिष्य की जिम्मेदारी उठाने की थी वहीं वर्तमान में शिक्षक-विद्यार्थी का साथ दिन के कुछ घंटों भर का रह गया है। प्राचीन काल में विद्यार्थी (शिष्य) एक बार गुरुकुल आ गया तो फिर वह गुरु का उत्तरदायित्व हो जाता था और शिष्य के हर आचार-विचार के बारे में गुरु को पूरी जानकारी होती थी। गुरु-शिष्य दोनों सुख-दु:ख के साथी होते थे जिसे समयावधि में नहीं बाँधा जा सकता। दोनों में सहज संवाद, सीखना-सिखाना एक सतत् प्रक्रिया के रूप में होते थे। वर्तमान में इन सबका अभाव है। प्राचीन काल के गुरु अपने शिक्षा के दायित्व के प्रति समर्पित थे, वे ज्ञान, शील, सदाचार, धर्मज्ञ, सत्य, अहिंसा अपरिग्रह की साक्षात् मूर्ति थे। शिक्षक केवल शिक्षण-कार्य ही नहीं वरन् उनकी साधना, व्रत और संकल्प था। शिक्षण-धर्म (कर्तव्य) निर्धारित था और गुरु विद्यादान के अडिग कड़ी होते थे। गुरुकुल का अभीष्ट आचार्य एवं ब्रह्मचारी दोनों के तेज एवं यश का संवर्धन था। गुरु अपने ज्ञान एवं शील-सदाचार का सर्वस्व शिष्य को समर्पित करते थे और शिष्य उनकी आज्ञा के अनुसार आचरण करने वाले थे। जहाँ गुरु किसी भी व्यक्तिगत हित की भावना से दूर थे और विद्यार्थियों का सर्वांगीण विकास ही उनका मूल उद्देश्य था वहाँ गुरु-शिष्य के बीच मधुर एवं आध्यात्मिक संबंध थे। शिक्षक का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण एवं सम्मानित स्थान था। विद्यार्थी (शिष्य) गुरु के प्रति विनम्र एवं आज्ञाकारी होते थे तथा गुरु सेवा करना अपना परम सौभाग्य समझते थे। आज स्थिति इससे बिल्कुल भिन्न है और दोनों तरफ से मूल्यगत ह्रास स्पष्ट दिखाई पड़ रहा है। समाज में भी शिक्षक के स्थान की गिरावट प्रत्यक्ष दिखाई देती है। समाज का शिक्षक पर विश्वास नहीं रहा है। इन परिस्थितियों के कारणों और उत्तरदायित्व की परिचर्चा बहुत विस्तृत हो सकती है, परन्तु जब-जब भी समाज में शिक्षक, शिष्य और शिक्षा का जिक्र गहराया और गरमाया है तब-तब शिक्षकों को ही कठघरे में खड़ा किया गया है। सारी परिस्थितियों का दोष शिक्षक को देना ही ठीक नहीं है, इसमें शिक्षा से जुड़े सभी पक्ष जिम्मेदार हैं इस सब में नीतियाँ, सरकारी प्रयास, अध्यापक, विद्यार्थी, अभिभावक और

समाज सभी जिम्मेदार हैं। यह बेहद संवेदनशील बिन्दु है और सभी को अपने-अपने हिस्से का सच तलाशना होगा। इस सच की तलाश जितनी जल्दी हो जाए उतना ही अच्छा है।

किसी भी राष्ट्र का विकास उस राष्ट्र की 'मानवीय संपदा' की गुणवत्ता और 'शिक्षकों की गुणवत्ता' पर निर्भर करता है। नियम-अधिनियम किसी समस्या के एक सीमा तक प्रभावित कर सकते हैं, परन्तु सम्पूर्ण परिवर्तन और दीर्घकालिक समाधान के लिए व्यक्ति और समाज के दृष्टिकोण में परिवर्तन आवश्यक होता है जो शिक्षा और शिक्षकों द्वारा किया जाना संभव हो सकता है। शिक्षक से राष्ट्र और समाज को बहुत अपेक्षाएँ रहती हैं परन्तु लगातार बढ़ती इन अपेक्षाओं और उत्तरदायित्वों के बीच में शिक्षक अपना रास्ता तभी खोज सकता है जब उसे अपना कार्य सुचारू रूप से करने की स्वतंत्रता और व्यवस्था दी जाए। उसे राष्ट्र और समाज द्वारा उचित सम्मान मिले। समाज व्यवस्था से वर्तमान शिक्षक की सबसे पहले अपेक्षा यह होती है कि उस पर विश्वास किया जाए, जैसा कि प्राचीन काल के गुरु पर था। परन्तु वर्तमान में व्यवस्था की सारी खामियों और शिक्षा की कमियों का ठीकरा शिक्षक पर रखा जाता है। कमियों और खामियों के लिये कभी कोई मंत्री, शिक्षा निदेशक या जिला स्तर का अधिकारी किसी कमी के लिए जिम्मेदार नहीं ठहराया जाता है। शिक्षकों के 30-60 प्रतिशत तक पद रिक्त हैं जिसके कारण अतिरिक्त शिक्षण दायित्व उन पर पड़ता है। शिक्षक का दायित्व केवल शिक्षा और शिक्षण का है, परन्तु वर्तमान में शिक्षक जनगणना, चुनाव, पल्स पोलियो, मिड-डे-मील और अन्य अनेक सरकारी योजनाओं के क्रियान्वयन का कार्य करने के लिये बाध्य है। इन कार्यों को करते हुए शिक्षक के स्वयं का मूल दायित्व के लिए समय न निकाल सकना उसकी मजबूरी बन गयी है। विद्यालय प्रमुख, शिक्षा अधिकारियों और नीति-निर्माताओं से इन सब कार्यों के औचित्य का प्रश्न एक शिक्षक के अधिकार से छीन लिया गया है। किसी अन्य पेशेवर वर्ग जैसे- डॉक्टर, इंजीनियर आदि से उनके मूल कार्य से हटकर कभी इस तरह के कार्य नहीं करवाये जाते हैं। शिक्षक की भूमिका व्यक्ति का जीवन संवारने, सही दिशा देने और सही गलत में अन्तर करने की क्षमता का विकास करने की है जो सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण है। शिक्षक अनेक पीढ़ियों का निर्माण करते हुए एक समरस समाज का निर्माण करने का दायित्व लेने वाला है, इसलिए उसकी भूमिका को गंभीरता से लिया जाना चाहिये।

वर्तमान समय में भी शिक्षक के दायित्व प्राचीन गुरु के दायित्वों के समान ही 'मानव निर्माण' है। आज केवल लक्ष्यों के साधनों के स्वरूप में परिवर्तन हुआ है या लाया गया है। आज भी इसकी महती आवश्यकता है कि शिक्षकों को उनके विद्यार्थियों के बीच और सिर्फ उनके लिए छोड़ दिया जाना चाहिये। समाज द्वारा आज भी शिक्षकों को वही पहले वाला विश्वास और सम्मान प्राप्त होना चाहिये ताकि शिक्षक अपने शिष्य (विद्यार्थी) और समाज के प्रति अपने दायित्व का निर्वाह उसी कुशलता के साथ कर सके। प्राचीन काल के गुरु के समकक्ष आज का शिक्षक भी उसी उच्च पद पर आसीन हो जिसका कि वह वास्तव में अधिकारी है। ❑

(व्याख्याता, हरिभाऊ उपाध्याय महिला शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालय, हटूण्डी, अजमेर)

हिमाचल प्रदेश शिक्षक महासंघ का गुरुवंदन कार्यक्रम सम्पन्न

हिमाचल प्रदेश शिक्षक महासंघ ने 26 अगस्त 2018 को शिमला में शिक्षा निदेशालय के सभागृह में गुरु वंदन कार्यक्रम आयोजित किया गया जिसमें विषय प्रवर्तक के रूप में राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के माननीय प्रांत प्रचारक संजीवन का मार्गदर्शन मिला। कार्यक्रम में मुख्यातिथि के रूप में शिक्षा निदेशक (उच्च शिक्षा) डॉ. अमरजीत तथा विशिष्ट अतिथि के रूप में राज्य परियोजना निदेशक (समग्र शिक्षा अभियान) आशीष कोहली उपस्थित थे। अतिरिक्त शिक्षा निदेशक (उच्च) मोहनलाल आजाद तथा संयुक्त शिक्षा निदेशक दीक्षा मल्होत्रा भी उपस्थित रहे। अतिरिक्त प्रांतमहामंत्री विनोद सूद ने मंच संचालन किया। दीप प्रज्वलन व सरस्वती वंदना के साथ कार्यक्रम आरंभ हुआ। अखिल भारतीय राष्ट्रीय शैक्षिक महासंघ के राष्ट्रीय संयुक्त मंत्री पवन मिश्रा ने संगठन परिचय दिया। संजीवन जी ने कहा कि गुरु ही राष्ट्र व समाज को सही दिशा प्रदान करता है। समाज में व्याप्त बुराइयों को समाप्त करने व सरकारी प्रशासन को भी समय-समय पर दिशा देने में गुरु की भूमिका को इंगित किया। अध्यापकों को गुरु रामदास, रविदास, तेगबहादुर, विश्वामित्र, विवेकानंद, चंद्रगुप्त के जीवन से शिक्षा लेनी चाहिए। अध्यापकों को आचार्य की भांति अपने आचरण से, व्यवहार से, संस्कृति से, शिष्टाचार से शिष्यों को राष्ट्र निर्माण की, राष्ट्र प्रेम की, स्वाभिमान की शिक्षा देनी चाहिए उन्होंने कहा कि प्रकृति कमाकर खाने की, संस्कृति दूसरों को खिलाने की तथा विकृति छीन कर खाने की है।

भारतीय संस्कृति विश्व कल्याण की है तथा राक्षसी संस्कृति पाश्चात्य सभ्यता की है। शिक्षा निदेशक ने अपने उद्‌बोधन में शिक्षकों को समाज को संस्कारित शिक्षा देने व राष्ट्र के प्रति नागरिकों में प्रेम उत्पन्न करने की भावना पैदा करने वाली शिक्षा देने को कहा। कार्यक्रम में जिला भाजपा अध्यक्ष संजय सूद, राष्ट्र सेविका समिति की प्रांत कार्यवाहिका डॉक्टर मुक्ता ठाकुर, महिला मोर्चा की प्रांत महामंत्री भारती सूद एवं स्वदेशी जागरण मंच के संयोजक शशिकांत, मातृवंदना संस्थान के वरिष्ठ उपाध्यक्ष मीनाक्षी सूद आदि गणमान्य बंधु उपस्थित थे।

शिक्षक, शिक्षण और सम्मान

परमाणु संरचना पढ़ाते समय मैं कणाद का नाम लेना कभी नहीं भूला। या कि इस सिद्धांत की व्याख्या करते समय कि इलेक्ट्रॉन पदार्थ कण भी है और ऊर्जा भी (एक असंभव सी बात) मैं जैन स्यादवाद की चर्चा अवश्य करता था जो स्पष्ट कहता है कि – ''सत्य तो बहुमुखी होता है और इसीलिये व्याख्यायें अनेक हो सकती है।'' मेरा मानना है कि एक विशाल श्याम विवर (ब्लेक होल) से सृष्टि की उत्पत्ति संबंधी आधुनिक मान्यता की व्याख्या करते समय वेदों में वर्णित हिरण्यगर्भ की चर्चा अवश्य करनी चाहिये। शिक्षक की भूमिका एक सम्पूर्ण मार्गदर्शक की होती है। अध्ययनशील एवं विषय के प्रति एक अत्यंत पैनी और विश्लेषणात्मक दृष्टि के विकास के साथ ही (जो भविष्य में उसे एक सफल शोधकर्ता बनाने में सहायक होगी) वह विद्यार्थी के व्यक्तित्व को भी निखारता है और भावी सक्रिय जीवन के लिये उसे तैयार करता है।

❑ **डॉ. ओम प्रभात अग्रवाल**

सम्पूर्ण जीवन में रसायन शास्त्र के उच्चतर शिक्षण के प्रति समर्पित रहने के कारण जब इस बार ''शैक्षिक मंथन'' ने सितंबर अंक के लिये उपर्युक्त विषय पर लिखने का अवसर दिया तो इस सेवानिवृत्ति काल में भी मेरी कुंडलिनी जाग्रत हो गई और मैं अपने स्मृति कोष को खंगालने लगा। मुझे लगा कि विषय के परिप्रेक्ष्य में संगत व्यक्तिगत अनुभवों के साथ भूमिका के मुख्य बिंदुओं को उजागर करना और उनकी तर्कसंगत पुष्टि सर्वथा उचित और समीचीन रूप से विषय को प्रतिपादित कर सकेगी।

उच्चतर शिक्षण विद्यालयों तथा विश्वविद्यालयों की प्राथमिक भूमिका अपने विद्यार्थी को विषय का गहन ज्ञान (ज्ञान की नवीनतम स्थिति सहित) प्रदान करने की होती है। विद्यार्थी को विषय ज्ञान की समग्रता के लिये आनुषंगिक आयामों की जानकारी देना भी आवश्यक होता है। स्वाभाविक है कि इसी में उसे इस संबंध में देश की विरासत से भी परिचित कराना चाहिये ताकि उसका देशाभिमान उच्चतम स्तर पर बना रह सके। स्मरणीय है कि शिक्षक की भूमिका वस्तुत: विषय में विद्यार्थी की पैनी दृष्टि विकसित करने की होती है जो भविष्य में उसके द्वारा ज्ञान की सीमा के विस्तार में सहायक बने। स्पष्ट है कि इस सबके लिये विषय संबंधी शिक्षक का अपना भी चौतरफा ज्ञान आवश्यक है और इसीलिये उसे सतत अध्ययनशील रहना पड़ता है। यही नहीं, कक्षा में जाने से पहले दिये जाने वाले पाठ के संगत ज्ञान को ताजा कर मस्तिष्क में सुनियोजित कर लेना प्रभावी व्याख्यान और ज्ञान के समुचित सम्प्रेषण में अत्यधिक सहायक होता है।

अपना कॅरियर प्रारंभ करने से पहले ही इन बिंदुओं को मैंने आत्मसात कर लिया था। मेरा यह भी प्रयत्न रहता था कि पुस्तकों और गुरुओं से जो ज्ञान मुझे प्राप्त हुआ था उसे पूर्ण रूप से विद्यार्थी के मस्तिष्क में प्रतिष्ठित कर दिया जाय। इन सबका फल भी मुझे शीघ्र ही मिला। बिल्कुल प्रारंभ में ही मुझे एम.एस.सी. (प्रथम वर्ष) पढ़ाने को कहा गया। मैंने वर्ष 1962 में कुछ देर से ही पद संभाला था। मुझे 'रासायनिक बंधता' पढ़ाने के आदेश दिये गये। इस विषय में मेरा अनुभव कम था। विषय को आत्मसात करने के लिये मैंने अपने पूर्ववर्ती से सलाह माँगी। उत्तर मिला – ''देखो भाई। यह विषय बहुत कठिन है। तुम फलां पुस्तक से विद्यार्थियों को कक्षा में लिखा कर केवल रट लेने को कह देना। समझा पाना संभव न होगा।''

मैंने सलाह को दरकिनार कर पुस्तकालय की कुछ पुस्तकों से गंभीर अध्ययन कर कक्षा में व्याख्यानों को देने का निश्चय किया। मेरे विद्यार्थी निश्चित रूप से प्रभावित हुये होंगे क्योंकि जब वर्ष के मध्य में मुझे पुन: आदेश मिला कि अब मैं उक्त कक्षा छोड़कर एम.एस.सी. (द्वितीय वर्ष) में आ जाऊँ और मैंने इसकी सूचना छात्रों को दी तो कक्षा में सन्नाटा छा गया। कुछ क्षणों के पश्चात उनमें से एक उठा और अश्रुपूरित नेत्रों के साथ (यह बिलकुल सत्य है) उसने विनीत स्वर में आग्रह किया कि मैं उनकी कक्षा का शिक्षण करता रहूँ। मैं विवश था आग्रह न मानने के लिये, परंतु मुझे अहसास हुआ कि मैं अपनी भूमिका में सफल हो रहा हूँ। यह निश्चय एक जागरूक शिक्षक का सम्मान भी था। इसी प्रकार, कुछ वर्षों बाद मेरे एक सहयोगी जो अकार्बनिक अभिक्रिया क्रियाविधि पढ़ाते थे, सत्र के मध्य में विदेश चले गये। अब भार मेरे कंधों पर आ पड़ा। मेरे लिये विषय अछूता था। एक बार पुन: मैंने जी तोड़ मेहनत की और कक्षा में पढ़ाना प्रारंभ किया। परंतु प्रारंभ करते ही एक विद्यार्थी उठ खड़ा हुआ। कहने लगा कि पूर्ववर्ती ने तो इसे कठिन होने के कारण छोड़ देने को कहा था। मैंने उत्तर दिया कि मैं तो समझाऊँगा और तब तुम अपनी प्रतिक्रिया देना। कहना न होगा कि एक बार पुन: मैं सफल रहा।

शिक्षक की भूमिका छात्रों को नवीनतम जानकारी से परिचित कराने की भी होती है ताकि उसका ज्ञान उच्चतम स्वर का हो सके। एक बार एक Refresher Course में, मैं कुछ कतिपय अणुओं में अंतर्निहित बंधता की व्याख्या कर रहा था। CO अणु के संबंध में मैंने जो कुछ कहा उसे विद्यार्थी पचा नहीं पाये। एक ने खड़े होकर कह ही दिया कि पहले तो उन्हें कुछ और ही बताया गया था। मेरा उत्तर था कि नवीनतम व्याख्या वह थी जो मैं दे रहा था (अब यह जानकारी आम है) और तत्पश्चात मैंने इस व्याख्या के लाभ बताये। वह संतुष्ट हो गया और मुझे सभी उपस्थितों की मूक प्रशंसा मिली।

व्याख्यान के दौरान मैं संगत आनुषंगिक बातों पर प्रकाश अवश्य डालता था। उदाहरणार्थ, एम्पियरीयमिति पढ़ाते समय यह बताना नहीं भूलता था कि उस तकनीकी के जनक (एक चेकोस्लोवाक) ने तो मातृ तकनीक के आधार पर इसका नाम पोलैरोमिति रखा था परंतु विश्व पर अमरीका के जबरदस्त प्रभाव के कारण वहाँ के शोधकर्मियों के सुझाव पर एम्पियरीयमिति नाम प्रचलित हो गया था।

इसी प्रकार, परमाणु संरचना पढ़ाते समय मैं कणाद का नाम लेना कभी नहीं भूला। या कि इस सिद्धांत की व्याख्या करते समय कि इलेक्ट्रॉन पदार्थ कण भी है और ऊर्जा भी (एक असंभव सी बात) मैं जैन स्यादवाद की चर्चा अवश्य करता था जो स्पष्ट कहता है कि –

''सत्य तो बहुमुखी होता है और इसीलिये व्याख्यायें अनेक हो सकती है।''

मेरा मानना है कि एक विशाल श्याम विवर (ब्लेक होल) से सृष्टि की उत्पत्ति संबंधी आधुनिक मान्यता की व्याख्या करते समय वेदों में वर्णित हिरण्यगर्भ की चर्चा अवश्य करनी चाहिये।

शिक्षक की भूमिका एक सम्पूर्ण मार्गदर्शक की होती है। अध्ययनशील एवं विषय के प्रति एक अत्यंत पैनी और विश्लेषणात्मक दृष्टि के विकास के साथ ही (जो भविष्य में उसे एक सफल शोधकर्ता बनाने में सहायक होगी) वह विद्यार्थी के व्यक्तित्व को भी निखारता है और भावी सक्रिय जीवन के लिये उसे तैयार करता है। इस भूमिका के लिये उसका स्वयं का आचरण भी आदर्श होना चाहिये। जैसे कि उनमें समयबद्धता की भावना के विकास के लिये वह स्वयं यदि ठीक समय से कक्षा में प्रवेश करे तो बात बन जायेगी। इसी प्रकार, मुसीबत में पड़े साथी की सहायता के लिये सतत तैयार रहने संबंधी पाठ भी मैं उन्हें एक घटना के दौरान दे पाया। मैंने कक्षा में प्रवेश किया तो एक लड़का (वह बाहर से आया था) सामने खड़ा होकर एक लड़की पर पिस्तौल तान कर कह रहा था – ''मैं तेरे को शूट कर दूँगा।'' पहले तो मैं स्तब्ध रह गया। फिर कड़क कर पूछा ''क्यों शूट कर दोगे?'' उसने बिना मेरी ओर चेहरा घुमाये और मेरे प्रश्न की अवहेलना कर पुन: शूट करने की बात कही। मैंने जोर से कहा आओ पहले मुझे शूट करो। उसने फिर मेरी बात अनसुनी कर दी और पिस्तौल ताने खड़ा रहा। तब मैंने विद्यार्थियों को ललकारा कि उन्हें शर्म आनी चाहिये कि वे चुप बैठे हैं और उनकी साथिन को प्रताड़ित किया जा रहा है। मेरी ललकार सुनते ही कक्षा के सभी लड़के उठ खड़े हुये और उसे पकड़ने दौड़े। वह भागा, मैं भी उसके पीछे दौड़ा और मेरे पीछे लड़के। वह पकड़ में तो नहीं आ सका परंतु कक्षा के लड़के और लड़कियों में मेरे लिये आदर भाव द्विगुणित हो गया।

मेरे इन प्रयत्नों के ही कारण आज भी मेरे पास पुराने विद्यार्थियों के अतीव श्रद्धा भाव से परिपूर्ण फोन आते रहते हैं। सेवानिवृत्ति के पहले दिन जब मैं अंतिम व्याख्यान के लिये कक्षा में पहुँचा तो छात्रों ने पढ़ने से इन्कार कर दिया और खींच कर मुझे बाहर ले गये जहाँ उन्होंने हर प्रकार से मेरा स्वागत सत्कार किया, भावभीने वक्तव्य दिये, मुझे एक भेंट दी और घर तक मुझे पहुँचाने आये। इस अनूठे प्रेम, आदर और सम्मान से मैं अभिभूत हो गया।

लेख के अंत में सारांश में यही कहा जा सकता है कि उच्चतर शिक्षण में शिक्षक की भूमिका सम्पूर्ण पथप्रदर्शक की होती है। प्रारंभिक अध्यापक बच्चों में जिन गुणों और संस्कार का सूत्रपात करते हैं, ये शिक्षक उसी को निखार कर व्यक्तित्व को अत्यधिक आकर्षक बनाने का कार्य करते हैं। इसके साथ ही, छात्रों को विषय का पांडित्यपूर्ण ज्ञान प्रदान कर उन्हें ज्ञान की सीमाओं को भविष्य में और अधिक विस्तारित करने की योग्यता प्रदान करना तो उनकी प्राथमिक भूमिका होती ही है। ❑

(पूर्व सदस्य–केंद्रीय हिन्दी समिति, भारत सरकार)

Dr. S. Radhakrishnan : At a Glance

An Acharya in Bharat is capable providing the precise intellectual requirement to the correct student. The same 'Mantra' should mean different to different minds, depending on different mental requirement. The Acharya senses that and provides the right sense to the right pupil. Then alone shall all knowledge make sense and meaning for the entire society. We always have such teachers, and we always had such teachers, and Radhakrishnan is one example of a teacher approximating Acharya status.

❑ **Dr. T. S. Girishkumar**

It is the Greek thinker Plato who discussed about philosophers being kings in his ideal state, which is termed Utopia, in his most popular work – dialogue – The Republic. Plato was trying to argue out a situation where the Philosophers ought to be rulers, and he also argues that such shall be an ideal situation for best human existence. Perhaps this really happened in Bharat, albeit for just once, through Dr. S. Radhakrishnan becoming the second president of Bharat in 1962.

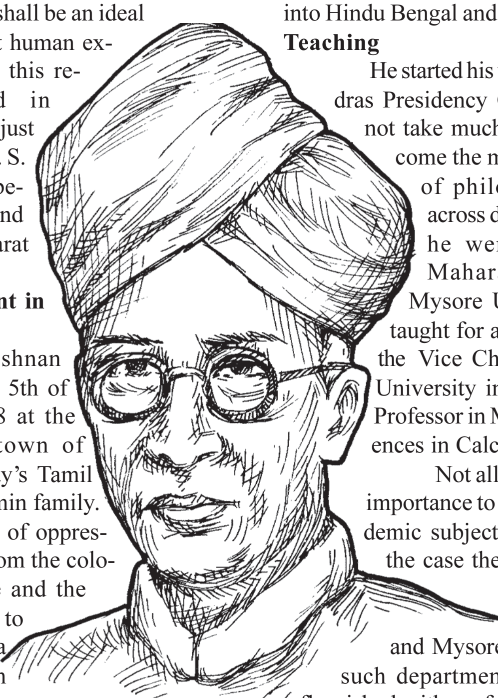

A priest aspirant in younger days

Radhakrishnan was born on the 5th of September 1888 at the small temple town of Tiruttani in today's Tamil Nadu in a Brahmin family. With such times of oppression to Bharat from the colonial British rule and the permanent threat to Hindu Dharma from Christian missionaries backed by colonial rule especially from the McCauley Max Muller combination, it was really necessary to keep the Hindu spirit high. This must have made his father to make him a temple priest instead of trying to do something else.

Indeed, Hindu scholars were highly needed to keep the spirits of common Hindus who had no serious access to education, especially the kind of education into Bharatiya Sanskriti and knowledge traditions from where Swabhimana shall arise. These precisely were the contributions from Swami Vivekananda as well as Maharishi Aurobindo in such troubled times.

Education

Radhakrishnan was interested in physical sciences in his early days. One of his cousins who studied philosophy gifted his text books to Radhakrishnan after completing the course successfully, and through reading those books Radhakrishnan got fascinated into philosophy. He obtained a scholarship from the Madras Christian College which was actually very uncommon for a Hindu. He graduated with first class in 1906, the very next year of the division of Bengal into Hindu Bengal and Muslim Bengal.

Teaching

He started his teaching career at Madras Presidency College where it did not take much time for him to become the most favourite teacher of philosophy to students across disciplines. From there he went to teach at the Maharaja's College of Mysore University, where he taught for a time till 1920 when the Vice Chancellor of Calcutta University invited him to join as Professor in Mental and Moral Sciences in Calcutta University.

Not all places in Bharat give importance to philosophy as an academic subject, and perhaps this is the case the world over. Only at some places philosophy is taken care of and Mysore University was one such department where philosophy flourished with professors like Hiriyanna. Calcutta University was always good with philosophy, even till date in spite of their materialistic influences from Marxism. Radha-krishnan shifted to Calcutta the very next year of getting invited, and joined Calcutta as professor in Mental and Moral sciences. His departure from Mysore in 1921 was marked with an interesting incident. The students of Mysore wanted to take him to Mysore Railway Station in a horse cart, and they arranged for such a cart. But when the students brought their teacher to the designated cart, the horses were missing. So, the students themselves pulled the cart all the way to the railway station, such was the respect he commanded from his students.

Calcutta

In Calcutta, Rabindra Nath Tagore and his popularity influenced Radhakrishnan in a big manner. He interacted very closely with Tagore and tried to learn from him about not only education, but also of the Nation, Bharat. It is here in Calcutta that Radhakrishnan wrote his first book, and obviously, he wrote his first book on Rabindranath Tagore.

It is from Calcutta that he went abroad lecturing philosophy. To start with, he went for Upton lectures at Manchester College. Then he made Haskell lectures at Chicago. It was from here that he became Spalding professor of eastern religions at Oxford University and remained so for three years.

He was ever mentally involved in the freedom struggle of Bharat. Bengal was constantly producing great Bharatiyas, like Aurobindo and Vivekananda. Vandemataram was a daily routine on the streets. His heart was filled with National pride and thoughts towards the freedom of the mother land.

He used all platforms he got to speak for the freedom of Bharat, though he was not an explicit activist like Swatantravir Savarkar. He remained mostly at theoretical level and contributed in his own way towards the nation's freedom.

After his return to Bharat, he took to writing books. Some of his famous books are "The Religion We Need", "The Heart of Hindustan" and the "Future of Civilisation"

Diplomat

From 1949 to 1953, Dr. S Radhakrishnan was the second ambassador to the former USSR at Moscow. That period was marked by intense cold war, but he made excellent relations with the USSR. The Russians were fascinated by his philosophy and he became popular not only as a diplomat, but also as a philosopher from Bharat.

Joseph Stalin was at the helm of things in the USSR and he was a very tough statesman. Hardly any one could meet or speak to him, including other statesmen. But from the popularity of Radhakrishnan, Stalin allowed him an audience, and their talks were interesting as well as meaningful.

Kashmir, which should have been very much an internal matter of Bharat was internationalised because of diplomatic follies of the then Bharatiya leadership. The king of Kashmir offered to join the Union of Bharat and the case was clear. Pakistan, who had played the card of religion to grab a chunk of land from Bharat was playing again, to grab Kashmir also. They were successful in managing support from both the US and UK, Pakistan had offered subservient existence to them, and they thought that it shall be useful to their interests.

Radhakrishnan had turned the tables upside down for both the US and UK, with his abilities. To everyone's shock, the USSR supported Bharat on the Kashmir issue in 1951. This was indeed a great achievement from Radhakrishnan.

In politics

He was the then Vice President of Bharat, and his visit to China in 1957 was much successful. He patted the cheek of Chairman Mao, and Mao himself was surprised. His sense of humour and warmth was impressing everyone.

He became the President of Bharat in 1962. Like what Plato had hoped for, a philosopher king in Bharat. Bertrand Russell, the British philosopher was very happy at this, and he applauded Radhakrishnan. When the king of Greece was visiting Bharat in 1962, Radhakrishnan told him that 'you are the second Greek king to visit my nation, though the first one came uninvited'. Such used to be his sense of humour.

The period of his Presidentship was not without turmoil. There were two wars, and two Prime Ministers were also lost. The new Prime Minister did not want such a powerful President in office, so he was not given a second term as President.

Achievements

From 1933 to1937, Radhakrishnan was nominated for Nobel Prize for five consecutive years. He was never given a Nobel Prize, there was no Nobel Prize for philosophy then as well as now also. He was nominated in the literature category, and in literature category, fiction writers get predominance than philosophers on a routine.

In 1931 he was Knighted by King George the Vth. In 1963, he was made honorary member of the British Order of Merit. Above all, he was given the Bharat Ratna in 1954. These apart, he was given many decorations from many quarters.

The philosopher

His contribution as a philosopher is remarkable. He wrote books on Bharatiya philosophy using European categories of concepts for them to comprehend. Thus, in a way, Bharatiya philosophy became intelligible to European world through his presentations. Even 'professional' philosophers in Europe were making mistakes in their understanding of Bharat, but Radhakrishnan could make some effective representation. Thus, his books got simple, straight as well as intelligible not only to European minds, but also to those people of Bharat who are European trained. As a mark of respect to him, his birth day is celebrated as teacher's day in our nation, as suggested by himself when some of his students approached him for a birthday celebration.

An Acharya in Bharat is capable providing the precise intellectual requirement to the correct student. The same 'Mantra' should mean different to different minds, depending on different mental requirement. The Acharya senses that and provides the right sense to the right pupil. Then alone shall all knowledge make sense and meaning for the entire society. We always have such teachers, and we always had such teachers, and Radhakrishnan is one example of a teacher approximating Acharya status.❑

(Ex. Professor of Philosophy, The Maharaja Sayajirao University of Baroda)

Role of Teachers in Quality Education

The quality of education depends on the very fact how successfully and efficiently the teachers perform their noble profession and how sincerely students do their studies.For quality education, it is essential that teachers need to be highly competent with commitment, devoted and dedicated to their duty. They create opportunities for students to learn, to know, to creatively think, to act and to grow. The teachers inspire students, instil human values in them and discipline their spirits to ensure the quality of higher education.

❑ **Dr. Anita Modi**

It has been rightly said, "Quality is not a chance, but a choice, quality is not an accident but a design; quality is not a destination but a continuous journey. The Oxford American dictionary defines quality as" a degree or level of excellence." Quality is a dynamic phenomenon. With reference to education, quality is concerned with the satisfaction level of stakeholders, viz. students, parents, government and the society by developing appropriate knowledge, skills and capabilities .For ensuring quality of education, competent, committed and honest teachers, need based curriculum, adequate-infrastructure , ideal student teacher ratio, motivated and disciplined students are essential components.

The quality of education is an important measure of productivity and prosperity of a nation. It is the quality of higher education which provides top-level efficient and capable manpower like engineers, doctors, managers, scientists, bureaucrats, technocrats and teachers who are essential for accelerating the process of development. Thus, manpower characterized by skills and competencies are built only on the foundation of the quality of education.

In the present era, the quality education is crucial to face this competitive world. Globally competent manpower is a pre requisite for this global competitive world. A recent survey also highlights this fact that market prefers those graduates who have practical application of knowledge, willingness to learn the amount of information they are exposed to, the urge to outshine others in the job, ability to lead and accept individual responsibilities, efficiency to learn new tasks and have finally a wider perspective of life. Thus, in order to face the global competition and advance the economy on the path of economic de-

velopment, all countries must ensure the quality of education.

Although, India has one of the largest education systems in the world, yet the quality of education has deteriorated in recent times. The deterioration in the quality of education is the main cause of concern for the country and it is urgently required to implement the effective policy measures to improve the quality. The sad plight of quality of education is also underlined by Pro. Reddy in the following words,

"Low quality of education affects development in the country. At a time when the country is liberalizing and entering the global market, we need to stress quality in education .It is the nature of the market economy that only those who are efficient, maintain high productivity and quality will survive."ShriArjun Singh, Ex-HRD minister also admitted the deplorable condition of higher education of country and said "Higher education is a sick child of education. It is not serving the cause of the young people."

In this context of deterioration of quality of education, the role of teachers in maintaining and augmenting quality of education has become more important and crucial. Teachers are one of the very important input indicators of quality education.Teachers are the pivot of any education system. They are not only the source and purveyor of knowledge but also an organizer and mediator of the learning encounter. Teachers are crucial elements in preparing young people not only to face the future with confidence but also to build them with purpose and accountability.Teachers carry out the teaching learning process in the classrooms, supervise the research work of the research scholars, carry out the individual and group research projects on various issues related to the socio- economic and scientific development of the country. Even, teachers provide consultancy and extension services to the students and governmenton the different important aspects of the economy and society.

The quality of education depends on the very fact how successfully and efficiently the teachers perform their noble profession and how sincerely students do their studies.For quality education, it is essential that teachers need to be highly competent with commitment, devoted and dedicated to their duty. They create opportunities for students to learn, to know, to creatively think, to act and to grow. The teachers inspire students, instil human values in them and discipline their spirits to ensure the quality of higher education.

Unfortunately, now a days it is blamed that the teachers' commitment towards their profession is slowly eroding and they only hanker after money. It is also believed in the society that the lack of interest and dedication among teachers are mainly responsible for the poor quality of higher education. But, the reality is that many factors are hindering the path of quality education. First of all, this noble profession has lost its glamour and attraction for the bright and brilliant youth. Thus, this profession is the last choice of talented and bright youth. Grim chances of promotion and improvement, decline in the social standard and prestige of this profession, inadequacy of infrastructure in educational institutions and low level of salaries as compared to other sectors are the factors responsible for this undesirable trend. Again, the regard and respect of teachers among students and society have declined and teachers are no more "Ideal" for them. The low teacher student ratio, burden of non-academic work on teachers , shortage of faculty members are factors responsible for undermining the quality of higher education. It becomes very difficult for teachers to manage and teach the over loaded classes, so the ultimate result is poor quality.

In recent years, a mushroom growth in the number of universities, colleges and schools has occurred in the private sector. The main objective of these institutions is to earn and not to provide quality education.It is a sad affair that some of these institutions are even devoid of the basic infrastructure facilities. Without these basic facilities, how we can expect the quality of education will be maintained, Even, the salary paid to the teaching faculty is Rs. 10000/- to 20,000/- per month. This salary is considerably less than the salary of a peon paid by the government. At such a low level of salary structure, how it can be expected that qualified, dedicated and intelligent faculty will be available to the student.

To control this grim situation, it is urgently required to control and regulate the sub-standard educational institutions. There should be

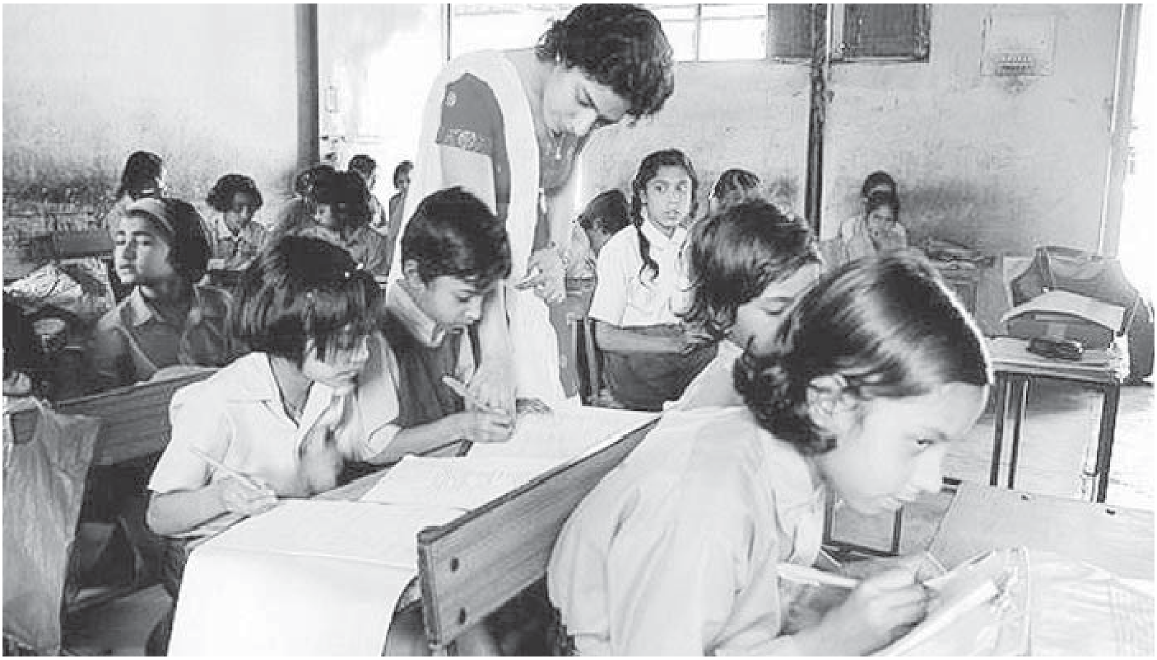

no compromise with the quality of education at any cost. Keeping this fact in mind, strict rules and regulations must be formulated for the entry of private institutions in this field and these rules must not be violated in any situation. Manipulation of any type and at any level must not be allowed. It is found that these private institutions promote"favourism, corruption and incompetence." The result is that dedicated, competent and committed teachers are deprived of opportunities of promotion and other benefits. This type of discrimination kills the motivation and dedication of the qualified teachers.

No doubt, the goal of quality education cannot be achieved without the sincere efforts of dedicated and committed teachers. To meet this challenge of quality, the entry of qualified, dedicated and committed scholars in this noble profession should be ensured. For this purpose, attractive, competitive remuneration and other perks should be offered to competent scholars. Again, the selection process of teaching faculty should be impartial, transparent and honest. This will be possible only when the total objectivity is maintained in the selection process of teachers and professors in the schools, colleges and universities. After the fair and impartial selection of teachers, it is essential to maintain the commitment, dedication and capabilities of the teachers. To achieve this objective, the teachers' performance needs to be evaluated regularly by using different techniques like students' ranking, self-appraisal reports etc.

In the present system of education, absence of any type of motivation kills the spirit of dedication, regularity and commitment. So, it is essential that competent teachers should be recognized and honored to motivate other teachers for excellence. To enhance and broaden the knowledge horizon of teachers, seminars, workshops, lectures of invited qualified faculty must be organized regularly. There is an urgent need to make the environment of colleges and universities academic, research oriented and free of political interferences.

Provision of adequate infrastructure is also essential for the promotion of quality of teachers and students. Computer facilities, separate rooms, required books and journals and reference material in the library must be arranged in these educational institutions so that teachers and students can engage themselves in the pursuit of studies and research work in vacant periods. By adopting these measures, the quality of education will improve a lot and the country will regain the position of "Vishva Guru".❑

(Head, Department of Economics, Govt. College, Khetri, Jhunjhunu)

वर्तमान शिक्षण पद्धति विद्यार्थियों को पुस्तकीय शिक्षा देती है, विभिन्न परीक्षाओं में उत्तीर्ण होना ही इस शिक्षण पद्धति का लक्ष्य है। इस शिक्षण व्यवस्था ने निरंतर ऐसी पीढ़ी का निर्माण किया है जो दंभी है और राष्ट्र के समस्त संसाधनों पर, अपना अधिकार मानती है। कर्त्तव्यविमुखता का पाठ पढ़ाती 'शिक्षापद्धति' को पुनर्गठित करने की आवश्यकता है। यह गहन चर्चा का विषय है कि शिक्षा व्यवस्था का पुनर्मंथन हो, 'शिक्षा' के उस स्वरूप की रचना की जाए जिसकी निर्भरता पुस्तकों से अधिक जीवन के वास्तविक ज्ञान पर हो। इस वास्तविक ज्ञान को जानने हेतु हमें स्वयं को इतिहास के उन पन्नों तक ले जाना होगा जहाँ शिक्षित समाज और राष्ट्र की अद्भुत विलक्षणता की चर्चा की गई है।

वर्तमान शिक्षा व्यवस्था का पुनर्मंथन

❑ **डॉ. ऋतु सारस्वत**

यह सर्वमान्य सिद्धान्त है कि इस धरती पर मनुष्य ही एक ऐसा जीव है जिसकी सर्वविद्य उन्नति कृत्रिम है यानि वह स्वभावत: पराश्रित है। शैशवकाल से जीवन के अंत तक सभी प्रकार के ज्ञान को प्राप्त करने के लिए उसे निर्भर रहना पड़ता है परंतु यह निर्भरता उसकी विलक्षणता है क्योंकि इसी सीखने की क्षमता ने उसे सभी जीवधारियों में सबसे अधिक शक्तिशाली बनाया है। सीखने और सिखाने की निरंतरता उसे संस्कृति को संजोने एवं आने वाली पीढ़ियों को हस्तांतरित करने की अद्भुत शक्ति देती है। वेदों के आविर्भाव से लेकर आज तक मानव की मानवीय भूमिका के निष्पादन में शिक्षा की महती भूमिका रही है। शिक्षा का स्वरूप चाहे कुछ भी हो, परंतु शिक्षाविहीन व्यक्ति मात्र, बाह्यरूप में मानव का आवरण ओढ़े रखा हो परंतु भीतरी तौर पर वह अमनुष्य रहता है। शिक्षा क्या है? इस प्रश्न के अनेकानेक उत्तर हैं परन्तु वैदिक स्वरूप में इसकी व्याख्या इस प्रकार है ''जिस से विद्या, सभ्यता, धर्मात्मता, जितेन्द्रियतादि का उन्नयन हो और अविद्यादि दोष छूटें, वही शिक्षा है।''

समाज और संस्कृति का निरन्तर प्रवाह ही राष्ट्र की सर्वथा उन्नति का परिचायक है। राष्ट्र की निधि अगर उसका विराट अतीत है तो भविष्य को सुनहरा बनाने के लिए उस निधि को आत्मसात् करते हुए विभिन्न आवश्यकताओं के अनुरूप परिवर्तित करना विवेकशीलता है। हमारी शिक्षा पद्धति ने एक ऐसे मार्ग पर चलना आरम्भ किया, जिससे सामने की कोई राह स्पष्ट नहीं होती। इस शिक्षा पद्धति ने बीते कई दशकों में ऐसी पीढ़ियों का निर्माण किया है जहाँ असंतुष्टता है, कोलाहल है, जीविकोपार्जन के लिए रोजगार को पाने की व्याकुलता है और उसके लिए तीक्ष्ण और कठोर शब्दों का प्रहार है। यह पीढ़ी अपनी प्रतिभा का आकलन किए बगैर, स्वघोषित ज्ञानी बनने की जिद ठाने बैठी है। उनके पास ज्ञान की वह पोटली है जिसमें अनेकानेक छिद्र हैं और इस तथ्य का

भान इस पीढ़ी को नहीं है।

वर्तमान शिक्षण पद्धति विद्यार्थियों को पुस्तकीय शिक्षा देती है, विभिन्न परीक्षाओं में उत्तीर्ण होना ही इस शिक्षण पद्धति का लक्ष्य है। इस शिक्षण व्यवस्था ने निरंतर ऐसी पीढ़ी का निर्माण किया है जो दंभी है और राष्ट्र के समस्त संसाधनों पर, अपना अधिकार मानती है। कर्त्तव्यविमुखता का पाठ पढ़ाती 'शिक्षापद्धति' को पुनर्गठित करने की आवश्यकता है। यह गहन चर्चा का विषय है कि शिक्षा व्यवस्था का पुनर्मंथन हो, 'शिक्षा' के उस स्वरूप की रचना की जाए जिसकी निर्भरता पुस्तकों से अधिक जीवन के वास्तविक ज्ञान पर हो। इस वास्तविक ज्ञान को जानने हेतु हमें स्वयं को इतिहास के उन पन्नों तक ले जाना होगा जहाँ शिक्षित समाज और राष्ट्र की अद्भुत विलक्षणता की चर्चा की गई है। राजा अश्वघोष की पंक्तियाँ –

'न मे स्तेनो जनपदे न कदर्यो न मद्यपः।
नाना हिताग्निर्नाविद्वान् न स्वैरी स्वैरिणी कुतः।।

प्राचीन भारत के गौरव की उन्नत स्थिति स्वः स्पष्ट वर्णित करती पंक्तियाँ अश्वघोष की गर्वोक्ति है। परन्तु क्या वर्तमान में ऐसे समाज की कल्पना करना संभव है जहाँ न कोई चोर हो, न कृपण और न शराबी। न कोई अग्निहोत्र करने वाला और न अविद्वान। यह सर्वविदित और अकाट्य सत्य है कि लार्ड मैकाले ने भारत की संपूर्ण शिक्षण व्यवस्था पर कुठाराघात किया। मैकाले ने कहा, 'I have travelled across the length and breadth of India and I have not seen owe person who is a thief. Such wealth I have seen in the country such high moral values, people of such calibre, that I do not think we would ever conquer this country, unless we break the very backbone of the nation, which is her spiritual and cultural heritage, and therefore I propose that we replace her old and ancient education system...' उपर्युक्त पंक्तियाँ सुस्पष्ट हैं कि शिक्षा, समाज की अवनति अथवा उन्नति की रीढ़ है। मैकाले की शिक्षा नीति ने भारतीयों को खोखला कर दिया परन्तु इस क्षोभ और आलोचनाओं से परे, अब आवश्यकता है कि इस व्यवस्था का विकल्प ढूंढ़ा जाए। एक नवीन शिक्षण व्यवस्था का निर्माण हो जहाँ पुस्तकीय ज्ञान से कहीं अधिक महत्त्व चरित्र निर्माण पर हो। एक ऐसी व्यवस्था को 'आकार' दिया जाए जहाँ व्यक्तित्व निर्माण एवं रोजगारोन्मुखी शिक्षण हो और इन दोनों ही तथ्यों को किस प्रकार शिक्षा व्यवस्था में सम्मिलित किया जाए इस पर गहन चर्चा की आवश्यकता है। इस संपूर्ण शिक्षा व्यवस्था का आधार स्तम्भ शिक्षक नहीं 'आचार्य' है।

आचार्यः उपनयमानो
ब्रह्मचारिणं कृणुते गर्भमन्तः।
तं रात्रीस्त्रिस्त्रं उदरे विभर्ति
तं जातं द्रष्टुमभिसंयन्ति देवाः।।

(अथर्ववेद 11.5.3)।

एक स्वर में उठने वाला प्रश्न यह है कि क्या ऐसे आचार्य भारतभूमि पर है? यह प्रश्न स्वयं में ही उत्तर है। आज भी देश में ऐसे कई गुरुकुल हैं, जहाँ 'आचार्य' बाल्यपन

से अपने विद्यार्थियों को तराश रहे हैं। देश को विश्व मानचित्र में पहचान दिलाने वाली पी.वी. सिंधु की अदम्य तपस्या को, उसके गुरु गोपीचंद ने स्वयं गढ़ा है। ऐसा ही अधुनातन उदाहरण देश के पिछड़े प्रदेश बिहार की राजधानी पटना का है जहाँ सुपर–30 के संस्थापक और गुरु ने, अनेक निर्धन बच्चों के भविष्य को अपने तप से गढ़ा है। भारतीय वैदिक संस्कृति ने वर्ण व्यवस्था, आश्रम व्यवस्था, धर्म एवं कर्म के जिन स्वरूपों की चर्चा की वह तार्किक है। जीवन के सुखों का परित्याग करके ही विद्यार्थी, ज्ञान को आत्मसात् कर सकता है। ब्रह्मचर्य आश्रम है, शिक्षार्थी को, विद्याध्ययन के अलावा, अपने भोजन एवं गुरु के भोजन का प्रबंध करना होता है। इस भोजन व्यवस्था में श्रम करके खाद्य उत्पादन, कृषि जैसे कार्य करने होते हैं। जहाँ राजा का पुत्र एवं एक सामान्य वर्ग से संबंधित विद्यार्थी समान भाव से कार्य करते। इस समस्त कार्यव्यवस्था के पीछे एक गहन विचारधारा थी कि परिश्रम और अहम् का परित्याग ही ज्ञानी होने के मार्ग को प्रशस्त करता है। ज्ञान व्यवस्था का यह स्वरूप आज भी संभव है। आवश्यकता है तो समग्र 'विचारमंथन' की। ❑

(एसोसिएट प्रोफेसर, राजकीय
महाविद्यालय, पुष्कर, अजमेर)

अगर यह विश्वविद्यालय बन जाता है तो यह राष्ट्रीय एकता को बढ़ावा देने और मजबूत करने में भी महती भूमिका निभा सकता है। कल्पना कीजिए कि एक ही परिसर में सभी भाषा के विद्वान और छात्र अध्ययन करते हों, एक दूसरे के बीच विचारों का आदान प्रदान करते हों, एक दूसरे की समस्याओं पर, भाषाई प्रवृत्तियों पर चर्चा होगी तो भाषाओं के बीच गलतफहमियाँ दूर होंगी। हिंदी को लेकर जिस तरह के भय का वातावरण अन्य भारतीय भाषाओं में पैदा किया जा रहा है वह भी दूर होगा। प्रोफेसर पांडे ने अपने प्रस्ताव में कहा है कि इस विश्वविद्यालय में बाइस मान्य भाषाओं के अलावा जितनी भी उपभाषाएँ या बोलियाँ हैं उनके भी मानक व्याकरण और इतिहास लेखन पर काम किया जाएगा।

भाषाई संगम का सुनहरा सपना

❑ **अनंत विजय**

भारतीय भाषाओं के लिए एक विश्वविद्यालय की स्थापना के प्रस्ताव ने कई मरते हुए सपनों को जिंदा किया है। इससे जहाँ आयातित विचारों पर विराम लगेगा तो मौलिक चिंतन की राह में आने वाली बाधाएँ दूर होंगी। भारतीय भाषाओं के ऐसे साहचर्य से महात्मा गांधी द्वारा भारतीय भाषाओं के जरिये राष्ट्रीय एकता को मजबूत करने का सपना भी पूरा होगा। 150 वीं जयंती पर राष्ट्रपिता के लिए यह सबसे बड़ी श्रद्धांजलि होगी।

राष्ट्रकवि रामधारी सिंह दिनकर ने 23 मई 1954 को गुजरात-सौराष्ट्र-कच्छ-प्रांतीय राष्ट्रभाषा प्रचार सम्मेलन के भावनगर में आयोजित सत्र में अपने अध्यक्षीय भाषण में कहा था कि 'वेद, उपनिषद्, रामायण और महाभारत ये ही वे घाट हैं जहाँ पर हमारी सारी भाषाएँ पानी पी सकती हैं। भाषा मूक भी होती है। भाषा संकेत को भी कहते हैं। और भाषा के इन रूपों को सभी लोग एक समान समझ भी लेते हैं। अतएव मुख्य वस्तु भाषा नहीं भाव है। भारतेंदु हरिश्चन्द्र ने भी कहा, 'भाव अनूठो चाहिए, भाषा कोऊ होय।' सो भाव की एकता को ही लेकर ये सारा देश एक रहा है और विभिन्न भाषाओं के भीतर से हम विभिन्न भावों की इसी एकता की अनुभूति करते हैं। भारत की भारती एक है। उसकी वीणा में जितने भी तार हैं उनसे एक ही गान मुखरित होता है। असल में ज्ञान की गाय हमारी एक ही है, ये सारी भाषाएँ उसके अलग-अलग थन हैं जिनसे मुँह लगाकर भारत की समस्त जनता एक ही क्षीर का पान कर रही है। भारत की संस्कृति एक है, विभिन्न भाषाएँ उसी संस्कृति से प्रेरणा लेकर अपने-अपने क्षेत्र में साहित्य रचती हैं और इन सभी साहित्यों से, अंततः उसी संस्कृति की सेवा होती है, उसी संस्कृति का रूप निखरता है जो सभी भारतवासियों का सम्मिलित उत्तराधिकार है।'

दिनकर के इस कथन से भारतीय भाषाओं के बीच के प्रगाढ़ संबंधों का पता चलता है, लेकिन आजादी के बाद भारतीय भाषाओं के बीच द्वेष बढ़ाने का काम लगातार किया जाता रहा। हिंदी के खिलाफ अन्य भारतीय भाषाओं को खड़ा किया गया। भारतीय भाषाओं पर अंग्रेजी को तरजीह दी जाती रही। अब भी दी जा रही है। माहौल कुछ ऐसा बना कि हिंदी समेत अन्य भारतीय भाषाओं में शोध को हेय दृष्टि

से देखा गया। अंग्रेजी में शोध की बाध्यता से हिंदी समेत भारतीय भाषाओं में मौलिक चिंतन बाधित हुआ। आजादी के सत्तर साल बाद भी अब तक भारतीय भाषाओं को अकादमिक तौर पर साथ लेकर चलने की ठोस कवायद नहीं हुई। अलग-अलग भारतीय भाषाओं को लेकर विश्वविद्यालयों की स्थापना हुई, लेकिन एक ऐसे परिसर की कल्पना नहीं की गई जिसमें संविधान की आठवीं अनुसूची में शामिल बाईस भाषाएँ एक ही परिसर में पल्लवित हों। आंध्र प्रदेश के चित्तूर जिले में द्रविड़ भाषाओं को प्रोत्साहन देते हुए, उसमें पढ़ाई, शोध और सामंजस्य हेतु 1997 में द्रविडियन यूनिवर्सिटी की स्थापना की गई। इस विश्वविद्यालय को आंध्र प्रदेश सरकार ने तमिलनाडु, केरल और कर्नाटक सरकार के सहयोग से स्थापित किया जहाँ तमिल, तेलुगु, मलयालम और कन्नड़ की पढ़ाई होती है। इसी तरह हिंदी और उर्दू को लेकर अलग-अलग विश्वविद्यालयों की स्थापना की गई। अन्य भाषाओं के नाम पर भी संस्थान होंगे। मैसूर में भारतीय भाषा संस्थान है, लेकिन वहाँ अलग तरह का कार्य होता है। इस देश की संसद ने 'द इंग्लिश एंड फॉरेन लैंग्वेजेज यूनिवर्सिटी' के नाम से केंद्रीय विश्वविद्यालय बनाया, लेकिन कभी हिंदी और अन्य भारतीय भाषाओं के नाम पर विश्वविद्यालय की स्थापना के बारे में विचार नहीं किया गया। इस ओर किसी का ध्यान नहीं गया या जानबूझकर भारतीय भाषाओं को नजरअंदाज किया गया, इस पर भी विचार करने की जरूरत है।

केंद्रीय हिंदी संस्थान, आगरा के निदेशक प्रोफेसर नंदकिशोर पांडेय ने इस बाबत विश्वविद्यालय अनुदान आयोग को 28 मई 2018 को एक प्रस्ताव भेजा है। उन्होंने हिंदी तथा भारतीय भाषा विश्वविद्यालय की स्थापना का सुझाव दिया है। उनका भी तर्क है कि 'विदेशी भाषाओं के अध्ययन-अध्यापन के लिए यह कार्य भारत सरकार ने बहुत पहले कर दिया था। लेकिन ऐसा भारतीय भाषाओं के संरक्षण और विकास के लिए नहीं किया गया। इस विश्वविद्यालय की एक बड़ी भूमिका प्रत्येक भाषा-भाषी क्षेत्र में बिखरी हुई वाचिक परंपरा की सामग्री के संग्रह और लिपिबद्ध करने की होगी। जो कुछ भी संग्रहीत हुआ है उसका सघन सर्वेक्षण तथा भाषिक और व्याकरणिक अध्ययन उसमें छिपे हुए भारतीयता के तत्त्वों के साथ ही ज्ञान-विज्ञान की वाचिक परंपरा का अन्वेषण करेगा। इस ज्ञान परंपरा को शीघ्र नई तकनीक से जोड़कर संरक्षित करना आवश्यक हो गया है। विलंब होते ही आधुनिकता के प्रहार से यह सब कुछ क्षत-विक्षत होने वाला है। तब एक बड़ी लोक सांस्कृतिक संपदा से यह देश वंचित रह जाएगा।' प्रोफेसर पांडेय का यह सुझाव अत्यंत महत्त्वपूर्ण है और यूजीसी को इस पर त्वरित गति से कार्रवाई कर मामले को आगे बढ़ाना चाहिए। यह सुझाव दिए भी दो महीने हो गए। कई भाषाविद् भी इस प्रस्ताव के समर्थन में हैं। उन्होंने भी इस पक्ष में यूजीसी को पत्र लिखे हैं। यदि भारत सरकार का मानव संसाधन विकास मंत्रालय अपनी भाषा और संस्कृति को लेकर गंभीर है तो इस प्रस्ताव के मिलते ही संसद के आगामी सत्र में इसे विधेयक का रूप देकर पारित कराया जाना चाहिए।

अगर यह विश्वविद्यालय बन जाता है तो यह राष्ट्रीय एकता को बढ़ावा देने और मजबूत करने में भी महती भूमिका निभा सकता है। कल्पना कीजिए कि एक ही परिसर में सभी भाषा के विद्वान और छात्र अध्ययन करते हों, एक दूसरे के बीच विचारों का आदान प्रदान करते हों, एक दूसरे की समस्याओं पर, भाषाई प्रवृत्तियों पर चर्चा होगी तो भाषाओं के बीच गलतफहमियाँ दूर होंगी। हिंदी को लेकर जिस तरह के भय का वातावरण अन्य भारतीय भाषाओं में पैदा किया जा रहा है वह भी दूर होगा। प्रोफेसर पांडेय ने अपने प्रस्ताव में कहा है कि इस विश्वविद्यालय में बाईस मान्य भाषाओं के अलावा जितनी भी उपभाषाएँ या बोलियाँ हैं उनके भी मानक व्याकरण और इतिहास लेखन पर काम किया जाएगा। इसके अलावा उन्होंने उन प्राचीन भारतीय भाषाओं को भी रेखांकित किया है जिनमें प्रचुर मात्रा में साहित्य उपलब्ध है, लेकिन वे अब प्रचलन में नहीं हैं। उनके सामने विलुप्त होने का खतरा मंडरा रहा है। इसके अलावा इस विश्वविद्यालय के स्थापित होने से एक और काम हो सकता है जिसकी ओर भी प्रस्ताव में ध्यान आकृष्ट किया गया है वह यह है कि भारतीय साहित्य का एक अनुशासन बने ताकि वैश्विक साहित्यिक परिदृश्य में हमारी उत्कृष्ट रचनाओं को प्रचारित किया जा सके। इसका लाभ यह होगा कि नोबेल पुरस्कार जैसे प्रतिष्ठित पुरस्कारों में भारतीय भाषाओं की भागीदारी बढ़ेगी।

इस विश्वविद्यालय के स्थापित होने का एक लाभ यह भी होगा कि इससे भारत में मौलिक चिंतन की अवरुद्ध हुई धारा का विकास संभव हो सकेगा। आयातित विचारधारा और आयातित भाषा ने हमारी ज्ञान परंपरा का नुकसान किया है उस नुकसान की भरपाई के लिए भी इस बात की आवश्यकता है कि सभी भारतीय भाषाएँ कंधे से कंधा मिलाकर चलें। जॉर्ज ग्रियर्सन ने अपनी मशहूर किताब 'लिंग्विस्टिक सर्वे' में लिखा है कि 'जिन बोलियों से हिंदी की उत्पत्ति हुई है उनमें ऐसी विलक्षण शक्ति है कि वे किसी भी विचार को पूरी सफाई के साथ अभिव्यक्त कर सकती हैं। हिंदी के पास देसी शब्दों का अपार भंडार है और सूक्ष्म से सूक्ष्म विचारों को सम्यक रूप से अभिव्यक्त करने के उसके साधन भी अपार हैं। हिंदी का शब्द भंडार बेहद विशाल लेकिन आज ऐसी स्थिति है कि हम हिंदी को विपन्न मानने लगे हैं, अपनी अज्ञानता के कारण हिंदी में शब्दों की कमी का रोना रोते हैं और अंग्रेजी के शब्दों का धड़ल्ले से प्रयोग करने लगे हैं। अगर हिंदी में कोई शब्द नहीं है या अन्य भारतीय भाषा में कोई शब्द नहीं है तो बजाय अंग्रेजी की देहरी पर जाने के हम अपनी सहोदर भाषाओं के उनके शब्दों का इस्तेमाल शुरू करें। अगर भारतीय भाषाओं के विश्वविद्यालय का स्वप्न मूर्त रूप ले पाता है तो यह कार्य भी संभव हो पाएगा। भारतीय भाषाओं के शब्द एक दूसरे की भाषा में प्रयुक्त होकर अपनी अपनी भाषा को समृद्ध करेंगे।

महात्मा गाँधी ने भारतीय भाषाओं को लेकर विस्तार से लिखा है जो संपूर्ण गाँधी वाङ्मय के खंड 13 और 14 में संकलित है। भारत सरकार अभी गाँधी जी की डेढ़ सौ वीं जयंती मनाने से जुड़े कार्यक्रमों पर विचार कर रही है। प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी खुद गाँधी जी से जुड़े ऐसे कार्यक्रमों में व्यक्तिगत रुचि ले रहे हैं और तमाम सरकारी योजनाओं को भी इससे जोड़ा जा रहा है। इस मौके पर अगर भारतीय भाषाओं के साहचर्य के उपर्युक्त प्रस्ताव को मंजूरी मिलती है तो गाँधी का भारतीय भाषाओं के माध्यम से देश की एकता की मजबूती का स्वप्न पूरा होगा। ❑

(स्वतन्त्र स्तम्भकार)

उच्च शिक्षा के सामने यक्ष प्रश्न

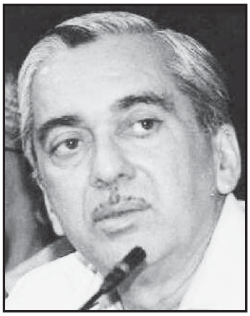

सरकारों द्वारा स्थापित संस्थान तभी सफल हो पाते हैं जब उन्हें शुरू में सही नेतृत्व और समुचित संसाधन मिल सकें। यह अब सर्व-स्वीकार्य है कि हर देश की शिक्षा-व्यवस्था की जड़ें उस देश की मिट्टी और संस्कृति में गहराई तक जानी चाहिए और उसे प्रगति के प्रति प्रतिबद्ध होना चाहिए। हर प्रकार के ज्ञान और विचारों को जानने, विश्लेषित करने तथा उसमें से उपयोगी को ग्रहण करने की तैयारी और क्षमता हर विश्वविद्यालय में होनी ही चाहिए। इस प्रकार विकसित शिक्षा प्रणाली को ही वर्तमान और भविष्य में सफल होने की संभावना बनती है। उसकी गतिशीलता, नवाचारों और शोध के प्रति प्रतिबद्धता भविष्य की सफलता से सीधे अनुपात में जुड़ती है।

❑ **जगमोहन सिंह राजपूत**

उच्च शिक्षा से अपेक्षाओं की सूची में जीविकोपार्जन के लिए योग्यता और कौशल, समाज तथा परिवार के प्रति कर्तव्यों की समझ और उनका निर्वहन तथा चरित्र निर्माण सदा दोहराए जाते रहे हैं। वैश्वीकरण की चमक-दमक में अपेक्षाओं और आकांक्षाओं की सूची लंबी होती गई है। मूल लक्ष्य और उद्देश्य संरक्षित रखते हुए भी शिक्षा व्यवस्थाओं को अपने कलेवर को लगातार गतिशील बनाए रखना आवश्यक होता है। किसी भी देश की शिक्षा-व्यवस्था की स्थिति की सही और सार्थक समझ के लिए वहाँ की ज्ञानार्जन परंपरा के सामाजिक-सांस्कृतिक पक्षों को जानना आवश्यक है। हर सभ्यता के विकास की कहानी उसकी ज्ञान-परंपरा के संबंध पर ही आगे बढ़ी है। उच्च शिक्षा संस्थान संचित ज्ञान को आगे बढ़ाते हैं, शोध-नवाचार करते हैं और ऐसी भावी पीढ़ी तैयार करने का प्रयास करते हैं, जो भविष्य निर्माण में सजग योगदान करने को तैयार हो। यहाँ विद्यार्थी यह जानने का प्रयास करते हैं कि उनके देश की ज्ञानार्जन परंपरा की सार्वभौमिकता कब और कैसे अवरुद्ध हुई; या की गई और उसका अब अंतरराष्ट्रीय पटल पर क्या स्थान है?

तेजी से बढ़ रहे ज्ञान के अनेक क्षेत्र नई चुनौतियाँ भी पेश कर रहे हैं, जिनसे मानव जीवन का कोई अंग अछूता नहीं रह सका है। इक्कीसवीं शताब्दी 'परिवर्तन की गति' की सदी है। इसे 'एज ऑफ एक्सेलरेसन्स' नाम दिया गया है। भारत के सभी लोग यहाँ की गौरवशाली ज्ञानार्जन परंपरा पर गर्व करते हैं। तक्षशिला, विक्रमशिला और नालंदा जैसे विश्वविद्यालयों की प्राचीन काल में रही उपस्थिति वैश्विक ज्ञान-परंपरा की अनमोल धरोहर है। ईसा-पूर्व सात सौ से छठी शताब्दी तक तक्षशिला साठ देशों के विद्यार्थियों को आकर्षित करता रहा। बाद में यह उन आक्रांताओं द्वारा नष्ट किया गया, जो सभ्यता और संस्कृति में भारत से बहुत पीछे और ज्ञान, संस्कृति, मानवीय मूल्यों और मानवीयता की समझ से परे थे। यह विश्वविद्यालय 1200 ई. तक बना रहा। दस हजार विद्यार्थी, डेढ़ हजार अध्यापक और एक सात का शिक्षक छात्र अनुपात! निःशुल्क शिक्षा, प्रवेश द्वार पर बैठे द्वार-पंडित की अनुशंसा पर! इसे बख्तियार खिलजी ने नष्ट किया।

जब नालंदा जैसे विश्वविद्यालयों को समाप्त किया जा रहा था, तब यूरोप में आधुनिक विश्वविद्यालयों का उदय हो रहा था। 1857 में जब अंग्रेजों ने भारत में कलकत्ता, मद्रास और बंबई में विश्वविद्यालय स्थापित किए तब उन्होंने लंदन विश्वविद्यालय के 'मॉडल' को यहाँ भी जैसे का तैसा अपनाया। लंदन विश्वविद्यालय केवल परीक्षाएँ लेता था, यहाँ भी यही प्रारंभ हुआ। भारत आज भी परीक्षा और अंकों के आतंक से मुक्त नहीं हो पाया है।

आज यह भली भाँति समझ लिया गया है कि प्रगति और विकास के मार्ग पर चलने के लिए रास्ता एक ही है शिक्षा, अनुसंधान और नवाचार! आजादी के बाद से ही भारत के विश्वविद्यालयों ने भी इसे पहचाना, क्रियान्वित किया और अंतरराष्ट्रीय स्तर का शोध कठिन परिस्थितियों में कर के दिखाया है। इसके लिए नए संस्थान और शोध प्रयोगशालाएँ भी स्थापित की गई। यह भी सही है कि देश में विश्वविद्यालयों की संख्या बढ़ने के साथ उनकी साख संसाधनों में कमी आई है। हर नए विश्वविद्यालय के समक्ष ये दो बड़ी चुनौतियाँ अब उभर रही हैं। परिस्थितियाँ कितनी ही कठिन क्यों न हों, हर विश्वविद्यालय को अपने मूल कर्तव्य को पहचानना आवश्यक है। विश्वविद्यालय के लक्ष्य और कार्यक्षेत्र तो वैश्विक ही हो सकते हैं, स्थानीयता का महत्त्व वैश्विक संदर्भ में देख पाना हर विश्वविद्यालय का नैसर्गिक उत्तरदायित्त्व बनता है। अनुभवों की नींव पर और भविष्य के प्रति सम्यक दूरदृष्टि अपना कर ही विश्वविद्यालय अपने लक्ष्य प्राप्त कर सकते हैं।

वर्तमान समय में पुराने और नए विश्वविद्यालय अपने को नए परिवेश में कैसे ढालें यह एक यक्ष प्रश्न उच्च शिक्षा में तेजी से उभरा है। आज की परिस्थिति में और अपने दो सौ वर्षों में

निर्मित दृष्टिकोण के प्रयास में हमारी पहली प्राथमिकता विदेशों के कुछ नामी-गिरामी विश्वविद्यालयों की नकल करने की ही बनती है। किसी भी सारगर्भित चर्चा में कुल मिलाकर यही निष्कर्ष निकलता है कि हमें हारवर्ड, एल, ऑक्सफर्ड, एमआईटी जैसा बनना है। लगभग हर बार यह भुला दिया जाता है कि कोई भी बड़ा विश्वविद्यालय किसी की नकल करके कभी नहीं बना। निजी क्षेत्र में वह अपने उद्देश्यों की जन-स्वीकार्यता और नवाचार की संकल्पना करने वाले की कर्मठता, पारदर्शिता और लगन पर प्रस्फुटित होता है। सरकारों द्वारा स्थापित संस्थान तभी सफल हो पाते हैं जब उन्हें शुरू में सही नेतृत्व और समुचित संसाधन मिल सकें। यह अब सर्व-स्वीकार्य है कि हर देश की शिक्षा-व्यवस्था की जड़ें उस देश की मिट्टी और संस्कृति में गहराई तक जानी चाहिए और उसे प्रगति के प्रति प्रतिबद्ध होना चाहिए। हर प्रकार के ज्ञान और विचारों को जानने, विश्लेषित करने तथा उसमें से उपयोगी को ग्रहण करने की तैयारी और क्षमता हर विश्वविद्यालय में होनी ही चाहिए। इस प्रकार विकसित शिक्षा प्रणाली को ही वर्तमान और भविष्य में सफल होने की संभावना बनती है। उसकी गतिशीलता, नवाचारों और शोध के प्रति प्रतिबद्धता भविष्य की सफलता से सीधे अनुपात में जुड़ती है।

नोबेल पुरस्कार प्राप्त अर्थशास्त्री और चिंतक गुन्नार मिर्डल की पुस्तक 'एशियन ड्रामा' 1968 में छपी और सारे विश्व में चर्चित हुई। उसी वर्ष इंदौर विश्वविद्यालय के दीक्षांत समारोह में दौलत सिंह कोठारी ने उस पुस्तक में से एक उद्धरण दिया था: 'आज दक्षिण एशिया में हम देखते हैं कि आधुनिकीकरण की विचारधारा से जो प्राथमिक रूप से पाश्चात्य आदर्शों, साम्यवादी सिद्धांतों के प्रभावस्वरूप अवसरों की समानता पर बल दे रही है- किस प्रकार प्रेरित होकर कुछ थोड़े से विद्वान नेता शिक्षा के क्षेत्र में क्राँतिकारी सुधार करने के लिए युद्धग्रस्त है। हम यह भी देखते हैं कि कुछ स्वार्थी लोग इन सुधारों को लागू होने से रोक रहे हैं या उनको कमजोर बना रहे हैं। अन्य बहुत-सी बातों की भाँति इस बात में भी हमें प्रजातांत्रिक और निरंकुश शासन वाले देशों के बीच में थोड़ा ही अंतर दिखाई पड़ता है। साम्यवादी चीन से जो दौड़ हो रही है उसका क्या परिणाम होगा, यह अधिकतर इस बात पर निर्भर करेगा कि विभिन्न राजनीतिक प्रणालियों वाले दक्षिण एशिया के देशों में, चीन की भाँति अपनी शिक्षा संस्थाओं को सुधारने का निश्चय है या नहीं।'

आधी सदी पहले भी यह ज्ञात था कि शिक्षा सुधारों से अधिक महत्त्वपूर्ण सुधार कोई हो ही नहीं सकता था। इसके लिए राष्ट्रीय इच्छाशक्ति और प्रतिबद्धता के अभाव में समेकित प्रगति और विकास के सपने गति नहीं पकड़ पाएंगे। ऐसा न हो पाने के जो भी कारण रहे हों, यह निष्कर्ष आज भी स्वीकार्य होना चाहिए कि अच्छी गुणवत्ता वाली उच्च शिक्षा चीन में इसलिए पनप सकी, क्योंकि वहाँ स्कूली शिक्षा में वर्ग-भेद पैदा नहीं होने दिया गया, और प्रारंभ में उचित संसाधन तथा अनुशासन-पूर्वक समाज का सहयोग उपलब्ध कराया गया। भारत में प्रारंभ से निजी स्कूलों को संपन्न तथा शिक्षित वर्ग का जो प्रश्रय मिला, उससे सरकारी स्कूल से ध्यान हटा उनकी साख लगातार घटी और आज खाई इतनी गहरी हो चुकी है कि उसे भरने के लिए कोई भी प्रयास तक करने को तैयार नहीं है। आज नहीं तो कल इसे भरना ही होगा। शायद उच्च शिक्षा प्राप्त साधन संपन्न वर्ग के युवा ही आगे आएंगे और वंचित वर्ग को शिक्षा में समान भागीदारी और सफलता के अवसर प्रदान करने के रास्ते खोज लेंगे।

हर पीढ़ी को अपना रास्ता स्वयं तय करना होता है, इसीलिए उसे देश-काल-परिस्थिति को जान-समझ कर निर्णय करने का अधिकार प्रकृति-प्रदत्त है। अगर हर पुत्र पिता के रास्ते पर ही चलता तो शायद सभ्यता का विकास हो ही नहीं पाता! विकास और प्रगति तो उन्हीं के कारण संभव है जो अलग से, लीक से हट कर सोचने का प्रतिफल विकसित कर लेते हैं। विश्वविद्यालय का कार्य विद्यार्थी को इस प्रकार तैयार करने का होता है कि उसका चिंतन प्रस्फुटित हो और अधिक से अधिक प्रखर होता रहे। अगर यह सघनता से किया जाए तो उच्च शिक्षा प्राप्त कर ज्ञान तथा विश्लेषण के कौशल से परिपूर्ण व्यक्ति कभी भी केवल स्व-केंद्रित बन कर जीवन नहीं जीएगा। शिक्षा किसी भी स्तर पर क्यों न हो, उसका लक्ष्य एक ही होता है- व्यक्ति मनुष्यत्त्व की राह पर आगे बढ़ता रहे, मानव-मात्र की एकता को समझे, समाज में अपना स्थान समझे और अपना योगदान निर्धारित करे, उन जन्मजात ऋणों को चुकाए, जिनके द्वारा उसका अपना जीवन जीने लायक होता है। मनुष्य को सभ्य और सामाजिक बनाने में हर धर्म के योगदान से हर बच्चे को आवश्यक रूप से परिचित कराना ही चाहिए। बच्चे हर धर्म के मूल सिद्धांत को जानें, समानताओं से परिचित हों और जहाँ-जहाँ अंतर है, उनका आदर करना सीखें। ऐसे में बचपन से ही उनमें विविधता की स्वीकार्यता की प्रवृत्ति आत्मसात हो जाएगी और यह सामाजिक जुड़ाव की नींव बनेगी। इस राह पर चल कर ही व्यक्ति वैश्विक पटल पर मनुष्य-मात्र की एकता की उपस्थिति और विविधताओं और भिन्नताओं को समझ सकता है। आज जब विश्व में अब तक एकांगी रहे समाज बहुभाषी, बहुपंथी और अनेक संस्कृतियों वाले बन रहे हैं, आज उच्च शिक्षा का यह महत्त्वपूर्ण मानवीय उत्तरदायित्त्व बनता है कि वह उस भाईचारे को प्रखरता दे, जिसके आधार पर भारत ने हर प्रकार की विविधता के साथ रहना सीखा था, हर एक को स्वीकार करने का अद्भुत उदाहरण विश्व के समक्ष रखा था। वह अनुकरणीय था और आगे भी रास्ता केवल यही है। ❑

(यूनेस्को में भारत के स्थाई प्रतिनिधि)

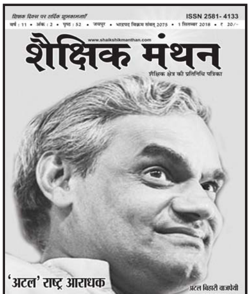

अरस्तू जैसे दार्शनिक ने सदियों पहले कह दिया था कि समृद्धि और संपन्नता के समय में शिक्षा अलंकार बन जाती है, जबकि विपरीत और विपन्न स्थितियों में शिक्षा शरणार्थी हो जाती है। आज हमारी शिक्षा की स्थिति उतनी संपन्न या विपन्न तो नहीं है, फिर भी शिक्षा विपरीत समय को बदल देने की ताकत क्यों नहीं बन रही है! रस्किन जैसा लेखक-विचारक तो मानता था कि गुणवत्ता कोई आकस्मिक घटना नहीं होती, वह हमेशा ही बौद्धिक प्रयत्नों का परिणाम होती है। यह बात सही साबित हो रही है हमारी उच्च शिक्षा को लेकर, क्योंकि हमारे बौद्धिक-प्रयत्नों में गिरावट आ गई है।

गिरती गुणवत्ता के पीछे

❑ **रमेश दवे**

उच्च शिक्षा किसी भी देश के सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक और बौद्धिक विकास की प्रतिनिधि होती है। वैसे तो प्राथमिक स्कूल से लेकर विश्वविद्यालय तक भारतीय शिक्षा की साख अच्छी नहीं कही जा सकती, मगर उच्च शिक्षा, जिससे देश की बौद्धिक क्षमता, कुशलता और राष्ट्रीय दक्षता स्तर को निर्धारित किया जाता है, वह स्वतंत्रता के इन सत्तर वर्षों से अपनी साख के लिए सर्वाधिक संघर्ष कर रही है। एलड्युअस हक्सले जैसे उपन्यासकार ने 1931 में लिखे अपने उपन्यास 'द ब्रेव न्यू वर्ल्ड' में भविष्यवाणी करते हुए कहा था कि आने वाले समय में संख्यात्मक वृद्धि इतनी होगी कि उससे गुणवत्ता और नैतिकता का स्तर गिर जाएगा। ऐसा लगता है कि उच्च शिक्षा के सामने अब एक बड़ा संकट गुणवत्ता और नैतिकता का ही है। महाविद्यालयों के प्राध्यापकों और विश्वविद्यालयों के शिक्षकों में अपने शैक्षिक दायित्व के प्रति उदासीनता और उपेक्षा बढ़ी है। अध्ययन, अध्यापन और शोध की प्रवृत्ति इस कदर घट गई है कि न तो उनका ज्ञान परिपक्व है, न अध्यापन के प्रति ईमानदार रुचि है और शोध की स्थिति तो इतनी दयनीय है कि शोध मात्र प्रायोजित कर्मकांड बन कर रह गए हैं।

अब प्रश्न यह है कि देश में सरकारी क्षेत्र में चार सौ से अधिक विश्वविद्यालयों, इनसे डेढ़ गुना प्राइवेट विश्वविद्यालयों और लगभग बारह हजार कॉलेजों के बावजूद उच्च शिक्षा निम्न स्तर पर क्यों मानी जाती है? सबसे महत्त्वपूर्ण तथ्य यह है कि प्राध्यापकों का मानस अब व्यापारिक यानी कॉमर्शियल तो अधिक हुआ है, पर प्रतिबद्ध या प्रोफेशनल कम। जब निष्ठाएँ डगमगा जाती हैं, तो प्रतिष्ठा अपने आप गिरने लगती है। शैक्षिक-कर्म, आस्था, निष्ठा और सतत् अध्ययन से ज्ञान के विकास का कर्म है। क्या ऐसा अब है?

अरस्तू जैसे दार्शनिक ने सदियों पहले कह दिया था कि समृद्धि और संपन्नता के समय में शिक्षा अलंकार बन जाती है, जबकि विपरीत और

विपन्न स्थितियों में शिक्षा शरणार्थी हो जाती है। आज हमारी शिक्षा की स्थिति उतनी संपन्न या विपन्न तो नहीं है, फिर भी शिक्षा विपरीत समय को बदल देने की ताकत क्यों नहीं बन रही है! रस्किन जैसा लेखक-विचारक तो मानता था कि गुणवत्ता कोई आकस्मिक घटना नहीं होती, वह हमेशा ही बौद्धिक प्रयत्नों का परिणाम होती है। यह बात सही साबित हो रही है हमारी उच्च शिक्षा को लेकर, क्योंकि हमारे बौद्धिक-प्रयत्नों में गिरावट आ गई है।

पवन अग्रवाल ने वर्ष 2009 में प्रकाशित अपनी शोधपूर्ण और तथ्यों और आँकड़ों से भरपूर पुस्तक 'इंडियन हायर एजुकेशन : एनविजनिंग द फ्यूचर' (भारतीय उच्च शिक्षा-एक भविष्य-दृष्टि) में अनेक कारण गिनाते हुए कहा है कि 1917-1919 के सेडलर आयोग से लेकर 1964-66 के कोठारी आयोग और बाद में राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986-92, चट्टोपाध्याय आयोग और समय-समय पर गठित अनेक समितियों ने उच्च शिक्षा को लेकर कारण और चिंता की तो चर्चा की, विस्तार भी खूब हुआ, फिर क्या कारण है कि लगभग दो सौ विश्वविद्यालयों और राष्ट्रीय तकनीकी और चिकित्सा-संस्थानों के सर्वे में हमारी एक भी उच्च शिक्षा की संस्था विश्व-स्तर की नहीं पाई गई? डॉक्टर अग्रवाल ने इसके चार प्रमुख कारण रेखांकित किए हैं। उच्च शिक्षा में गिरावट का प्रथम कारण हमारे पास आर्थिक क्षेत्र के अनेक स्तरों पर कौशल की कमी या भारी अभाव है।

जातिगत आरक्षण के आधार पर उच्च शिक्षा की प्रतिष्ठित संस्थाओं में श्रेष्ठ अध्यापकों की भर्ती की समस्या है, जिससे न्यायपूर्ण नीति को बल तो मिला, सभी क्षेत्रों के लोगों को अवसर मिलने से संस्थाओं का संख्यात्मक विस्तार हुआ, लेकिन अनेक योग्य पात्र कोटा-प्रणाली के कारण उचित अवसरों से वंचित हो गए। आरक्षित वर्ग से भी पर्याप्त लोग नहीं मिल पाए। जो संस्थागत वृद्धि हुई और कुशल मानवीय और भौतिक संसाधनों के कारण विकास की लहर प्रारंभ में पैदा हुई थी, उसे जारी रखने में हम कामयाब नहीं हुए और शैक्षिक विकास की गति को कायम न रख सके, न ही स्वस्थ प्रतियोगिता से उच्च शिक्षा का स्तर तय कर पाए।

चौथा महत्त्वपूर्ण कारण यह रहा है कि उच्च शिक्षा की माँग के अनुरूप हम कदम से कदम मिला कर नहीं चल सके और स्कूल स्तर पर मध्यवर्ग के छात्रों की संख्या में जो तेजी से वृद्धि हुई उसे उच्च शिक्षा ठीक से नियोजित करके संभाल नहीं सकी।

उच्च शिक्षा का स्तर ऊँचा उठाने के लिए वर्ष 1990 में सुकुमारन रिपोर्ट भी पेश की गई थी, जिसमें नैक, एनबीए, एनसीटीई, डीईसी, आईसीएआर आदि के प्रावधानों के साथ लगभग एक हजार बिंदुओं पर प्राइवेट और सरकारी संस्थाओं की व्यावसायिक गुणवत्ता (प्रोफेशनल क्वालिटी) को लेकर आकलन होना था। मगर यह प्रयास भी पूरी तरह सफल नहीं हुआ। संस्थाओं के पंजीकरण और मान्यीकरण के लिए जो गुणवत्ता बिंदु तय किए गए थे, उन्हें राजनीतिक हस्तक्षेपों और निजी क्षेत्र की शैक्षिक व्यापकता से उत्पन्न भ्रष्टाचार ने रद्दी की टोकरी में डाल दिया। डेल्फी के एक अध्ययन के अनुसार शोध-प्रक्रिया, समग्रता के साथ नवाचार, मान्यीकरण, औचित्य, अकादमिक लेखा-जोखा, प्रवीणता-आकलन आदि उपाय बताए गए थे, लेकिन उच्च शिक्षा संस्थाओं के शक्तिशाली आंतरिक राजनीतिक प्रतिरोध से ये उपाय भी ठीक से कारगर सिद्ध नहीं हुए।

उच्च शिक्षा किसी भी देश के सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक और बौद्धिक विकास की प्रतिनिधि होती है। वह नवाचारों, प्रयोगों, उच्च-अध्ययनों, शोधों, आविष्कारों की ऐसी पहचान बनती है कि जिससे उसकी विश्वव्यापी प्रतिष्ठा बनती है। 1946-48 में डॉ. राधाकृष्णन आयोग ने उच्च शिक्षा को भारतीय ज्ञान परंपरा और सांस्कृतिक और बौद्धिक उत्कर्ष की शिक्षा बनाने के साथ भाषा तथा लोक-संस्कृति के संरक्षण की बात भी कही थी। 1964-66 में कोठारी आयोग ने शिक्षा का मूल केंद्र राष्ट्रीय उत्पादकता मान कर उच्च शिक्षा के विस्तार, निजी विश्वविद्यालय और निजी तथा सरकारी स्वायत्त कॉलेजों की सिफारिश की थी। शिक्षा नीति ने भी उच्च शिक्षा को उत्कृष्टता और शोध से ऊँचा उठाने की बात कही थी।

इतना सब होते हुए भी अगर उच्च शिक्षा की साख गिरी है, निजी संस्थाओं का विस्फोट हुआ है, तकनीकी और प्रौद्योगिकी संसाधनों ने शिक्षा को ज्ञानात्मक से सूचनात्मक बना दिया है, तो देश के समूचे बौद्धिक और शिक्षाविद् वर्ग को सोचना होगा कि आखिर कमी क्या है कि आजादी के बाद हम एक भी सीवी रमण नहीं पैदा कर सके! और तो और, रामानुजन, शांतिस्वरूप भटनागर, मेघनाद साहा, होमी भाभा की कोटि का न वैज्ञानिक दे सके, न आजादी के आंदोलन के दौरान की वह संघर्षशील और बौद्धिक चेतना संपन्न पीढ़ी दे सके, जो अब हमारे लिए केवल अतीत बन कर रह गई है और हम वर्तमान की चौखट पर बैठ कर उच्च शिक्षा के निम्न-स्तर पर आँसू बहा रहे हैं। ❑

(स्वतन्त्र स्तम्भकार)

उच्च शिक्षा में चुनौतियाँ

❑ प्रो. सतीश कुमार

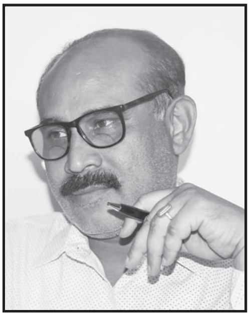

भारतीय शिक्षा जगत में कई चुनौतियाँ है। गुणात्मक और घनात्मक दोनों तरह की समस्याएँ है। विशेषकर अलग-अलग राज्यों के कॉलेजों में समस्या ज्यादा गंभीर है। कई तरह के शिक्षण संस्थान बेतरतीब ढंग से चलाए जा रहे हैं जहाँ पर सुनियोजित कोई योजना नहीं होती। यह अव्यवस्था कैसे बनी, किसने बनाई यह अपने आप में विवाद का विषय है। लेकिन जब कोई विद्यार्थी यह पूछे कि शीत युद्ध क्या है, तो यह कहना कि ठंड में लड़े गए युद्ध को शीत युद्ध कहते हैं। दरअसल ऐसा सुनने पर झेंप बच्चे पर नहीं होता, शिक्षा व्यवस्था पर होता है, कैसे हम निरंतर नीचे गिरते जा रहे हैं। गुणवत्ता कमजोर होती जा रही है। कहने के लिए हमने संख्या बढ़ा दी है, 16 प्रतिशत युवा उच्च शिक्षा की परिधि में है, लेकिन किस लायक है यह भी देखने की बात है। यह भी कहा जाता है कि दुनिया की सबसे बड़ी आबादी युवाओं की भारत में है। लेकिन किस तरह से भारतीय सोच को विक्षिप्त करने में सहायक है। इस बात की विवेचना जरूरी है।

भारत दुनिया में उच्च शिक्षा का केंद्र रहा। नालंदा और तक्षशिला जैसे संस्थान थे, जहाँ पर जीवन के मर्म को समझने का मौका मिलता था, अध्ययन केवल जीविका तक सीमित नहीं था, एक आदर्श और सोच पर टिका हुआ था। विज्ञान से लेकर धर्म और दर्शन की शिक्षा दी जाती थी। आधुनिक व्यवस्था ने भारतीय दर्शन को नोच-खसोट दिया। यह सच है कि मैकाले ने एक ऐसी नींव डाली जो भारतीय तन से होगा लेकिन मन और दिमाग से पूरी तरह अंग्रेज होगा। केवल हम उस व्यक्ति को दोष देकर मुक्त नहीं हो सकते। 70 सालों से देश आजाद है और शिक्षा की व्यवस्था भी देश के हवाले ही थी, फिर भी बदलाव क्यों नहीं आया? 60 सालों तक शासन करने वाली पार्टी ने शिक्षा का बंटाढ़ार क्यों किया? अगर गंभीरता से विचार करेंगे तो भारतीय व्यवस्था भारत की रही ही नहीं। दलील यह दी जाती है कि विश्व आर्थिक ढाँचे से जुड़ने के लिए ऐसा करना जरूरी था। क्या जापान एक विकसित देश नहीं है? लेकिन जापान के लोग न तो भारतीयों कि तरह पश्चिमी देशों में और न ही विदेशी भाषा को लेकर जकड़े हुए है। यही स्थिति जर्मनी और चीन की है। चीन के 9 विश्वविद्यालय दुनिया के 100 बेहतरीन संस्थाओ में अपना नाम दर्ज करवा चुके हैं, लेकिन

भारत दुनिया में उच्च शिक्षा का केंद्र रहा। नालंदा और तक्षशिला जैसे संस्थान थे, जहाँ पर जीवन के मर्म को समझने का मौका मिलता था, अध्ययन केवल जीविका तक सीमित नहीं था, एक आदर्श और सोच पर टिका हुआ था। विज्ञान से लेकर धर्म और दर्शन की शिक्षा दी जाती थी। आधुनिक व्यवस्था ने भारतीय दर्शन को नोच-खसोट दिया। यह सच है कि मैकाले ने एक ऐसी नींव डाली जो भारतीय तन से होगा लेकिन मन और दिमाग से पूरी तरह अंग्रेज होगा। केवल हम उस व्यक्ति को दोष देकर मुक्त नहीं हो सकते। 70 सालों से देश आजाद है और शिक्षा की व्यवस्था भी देश के हवाले ही थी, फिर भी बदलाव क्यों नहीं आया? 60 सालों तक शासन करने वाली पार्टी ने शिक्षा का बंटाढ़ार क्यों किया? अगर गंभीरता से विचार करेंगे तो भारतीय व्यवस्था भारत की रही ही नहीं। दलील यह दी जाती है कि विश्व आर्थिक ढाँचे से जुड़ने के लिए ऐसा करना जरूरी था।

हमारा तो एक भी संस्थान नहीं है। प्रश्न अत्यंत ही गंभीर है।

दूसरी समस्या शिक्षा की उपयोगिता और सोच को लेकर है। हमने विदेशी तर्ज पर शिक्षा को महज रोजगार से जोड़ दिया। यही कारण है कि भारत में पढ़े लिखे लोगों के बीच आत्महत्या की घटनाएँ कर्ज में डूबे हुए किसानों से ज्यादा होती है। एक आई.ए.एस अधिकारी जीवन से तंग होकर आत्महत्या कर लेता है। हर साल सैकड़ों छात्र पढ़ाई के दबाव में आत्महत्या कर लेते हैं। आँकड़ों के हिसाब से भारत में आत्महत्या करने वालों की तादाद सबसे ज्यादा है। इसका अर्थ यह हुआ कि शिक्षा को हमने जीविकोपार्जन से ज्यादा जोड़ दिया। भौतिक सुविधाएँ हमारे जीवन की मिसाल बन गयी। हमने समाज को भुला दिया, हमने देश को ताक पर रख दिया, हमारी कोशिश केवल अपनी सुख- सुविधा तक सिमट गयी। विषयों की प्राथमिकता भी सरकार के द्वारा वैसे ही बनने लगी। अगर मुआयना किया जाये तो यह देखने को मिलेगा कि दर्शन शास्त्र के विभाग कई जगहों पर बंद हो गए, नए विश्वविद्यालयों में खोला ही नहीं गया। जहाँ जीवन दर्शन की सीख मिलती थी वह बंद हो गया, उसकी जगह पर मैनेजमेंट और व्यावसायिक विषयों ने ले लिया। अर्थात् हमने जानबूझकर ऐसी बानगी रची कि पढ़ाई महज रोजगार तक ही सीमित रहे।

तीसरी समस्या विश्वविद्यालयों में वामपंथ को पसरने का मौका दिया गया। आज जे.एन.यू के कुलपति प्रो. जगदीश कुमार वर्षों से लगी हुई काई को साफ करने कि कोशिश कर रहे हैं तो तथाकथित प्रगतिशील शिक्षक उनको घेरने की जुगत में लगे हुए हैं। कांग्रेस और वामपंथ के बीच एक अलिखित समझौता हुआ जिसमें यह समीकरण बना कि कांग्रेस पार्टी ने शिक्षण परिसर को वामपंथ के हवाले कर दिया और बदले में वामपंथ ने संसद में कांग्रेस को मजबूत बनाने की बात स्वीकार की। तब से लेकर शिक्षा जगत में कई बुनियादी समस्याएँ आकर परिसर में फैल गयी। पहला, परिसर नक्सलियों का अड्डा बन गया। राष्ट्रवाद की समझ में विकृति ला दी गयी। जैसे राष्ट्र, पाप का घड़ा हो। भारत विरोधी गतिविधियों को तव्वजो दी जाने लगी। जे.एन.यू. परिसर से कश्मीर को आजाद करने की माँग उठने लगी। फ्रीडम ऑफ स्पीच को लेकर भारत राष्ट्र पर ताने कसे जाने लगे। अरुंधति राय को ज्ञान की देवी की तरह पेश किया जाता रहा। पाठ्यक्रम ऐसे बनाए गए कि दुनिया पूजा करे, लेकिन देश की फजीहत करे। दूर-दूर से आने वाले बच्चे को प्रगतिशील बनने की होड़ में राष्ट्र की समझ कमजोर होने लगी। आज जब स्थिति बदल रही है तो लोग कुलपति को कोस रहे हैं।

संघवाद को लेकर भी समस्या है। चूंकि शिक्षा समवर्ती सूची में आती है इसलिए समस्या कई रूपों में है। अलग-अलग राज्यों ने अपने तरीके से उच्च शिक्षा को तराशने की कोशिश की है जिससे समस्याएँ और बड़ी है। यह देश शिक्षा को ज्ञान का आधार मानता है, जहाँ पर देवी सरस्वती की पूजा से जोड़ा जाता है। अर्थात् हम केवल जीविकोपार्जन से नहीं बल्कि शिक्षा को ज्ञान और विज्ञान से जोड़ कर देखते हैं, जहाँ पर एक समाज बनाने की बात होती है, विश्व बन्धुत्त्व की बात होती है, जिसमें मानव कल्याण का अर्थ छिपा होता है, वह दर्शन हमसे दूर होता गया। वेदों की पढ़ाई परंपरागत मान ली गयी। गुरुकुल की शिक्षा को धर्म से जोड़ दिया गया कि यह हिन्दू संगठन की साजिश है। संस्कृत को एक जाति विशेष की भाषा बता दी गयी। परिवर्तन अब हो रहा है तो वामपंथियों की आँखों में सूजन पैदा हो रहा है। दिलचस्प है कि तमाम विरोधों के बावजूद प्रो. जगदीश कुमार जे.एन.यू. की शक्ल बदल रहे हैं। राष्ट्रवाद पर चर्चा हो रही है। वेदों में सिमटे ज्ञान को आम लोगों तक पहुँचाने की कोशिश की जा रही है। अब जरूरत भाषा को लेकर भी है। हिंदी का विकास देश की अस्मिता और शिक्षा दोनों के लिए जरूरी है। इसके बिना उच्च शिक्षा पंगु बनी रहेगी। ❑

(केंद्रीय विश्वविद्यालय हरियाणा)

देशीय अध्यापक परिषद् द्वारा राज्य में धरना प्रदर्शन

देशीय अध्यापक परिषद्, केरल द्वारा दिये गये धरने में प्रदेश महामंत्री पी.एस. गोपकुमार ने कहा कि तिरुअनन्तपुरम केन्द्र की ओर से शिक्षा क्षेत्र में केन्द्र द्वारा दी जाने वाली सहयोग राशि को अपना कहकर केरल सरकार लोगों को धोखा दे रही है। वाजपेयी सरकार के सर्वशिक्षा अभियान द्वारा आम विद्यालयों के अकादमिक और भौतिक रूप बदल गया है। मोदी सरकार ने स्कूली शिक्षा के लिये 41 हजार करोड़ रुपये निर्धारित किये हैं तथा शिक्षा क्षेत्र में जो भी बदलाव आये हैं वे सब केन्द्र की 25 प्रतिशत केन्द्र प्रवर्तित सहयोग राशि के कारण आये हैं ऐसा उन्होंने बताया। उन्होंने यह भी कहा कि केरल सरकार ने उच्च माध्यमिक स्तर के अध्यापकों के स्थानान्तरण नीति को पुन: बदल दिया है।

इस कार्यक्रम में देशीय अध्यापक परिषद् के प्रांतीय अध्यक्ष सी. सदानन्दन मास्टर ने अध्यक्षता की, एम.जी.ओ. संघ के प्रदेश महामंत्री जय कुमार, राज्य समिति के सदस्य जी.वी. बालकृष्णन, ओ.पी. अजन, जी.एस. बैनू आदि ने अपने विचार व्यक्त किये। केरल के विभिन्न स्थानों पर देशीय अध्यापक परिषद् के नेतृत्त्व में इस प्रकार के धरने दिये गये।

रोचक बने गणित की गुत्थी

❑ अभिषेक कुमार सिंह

जहाँ एक ओर भारतीय मूल के लोग दुनिया में अपनी गणितीय क्षमता का लोहा मनवा रहे हैं, वहीं दूसरी ओर भारतीय छात्रों में इस ओर रुचि कम हो रही है, जिसमें बदलाव लाना होगा।

शून्य के आविष्कारक देश के रूप में प्रतिष्ठित भारत में गणित को लेकर प्रायः कोई सनसनी तभी दिखाई देती है जब किसी भारतीय मेधा को इस क्षेत्र में उल्लेखनीय योगदान के लिए बड़े पुरस्कार से सम्मानित किया जाता है। यह भारत का सौभाग्य है कि बीते आठ वर्षों में चार साल के अंतराल पर दिया जाने वाला प्रतिष्ठित अंतरराष्ट्रीय सम्मान- फील्ड्स मेडल दो भारतवंशियों को मिला है। गणित के नोबेल पुरस्कार कहे जाने वाले इस सम्मान को भारतीय मूल के गणितज्ञ अक्षय वेंकटेश ने हासिल किया है। रियो डी जेनेरियो में हाल में हुई अंतरराष्ट्रीय कांग्रेस में यह सम्मान वेंकटेश को गणित में उनके विशिष्ट योगदान के लिए दिया गया। वेंकटेश इस समय अमेरिका की स्टैनफोर्ड यूनिवर्सिटी में प्रोफेसर हैं। उनसे पहले 2014 में भी यह करिश्मा अमेरिका की प्रिंस्टन यूनिवर्सिटी में प्रोफेसर एक भारतवंशी मंजुल भार्गव ने किया था।

जब भारतीय प्रतिभाएँ गणित के नोबेल से सम्मानित हो रही हों, तो जेहन में यह सवाल उठना स्वाभाविक है कि क्या ये उपलब्धियाँ हमारे देश के बच्चों और युवाओं में इस विषय को लेकर कोई उल्लेखनीय लगाव पैदा कर पाएँगी। यह सवाल आज इसलिए महत्त्वपूर्ण हो गया है क्योंकि दुनिया में फिर से गणित की उपयोगिता का दायरा खुल रहा है। जहाँ तक गणित के क्षेत्र में भारतीय मेधा का सवाल है, युवाओं में गणित से दूर भागने का चलन दिखाई देता है। मामूली जोड़-घटाव और गुणा करने तक के लिए बच्चे आज केलकुलेटर, मोबाइल फोन या कम्प्यूटर पर आश्रित हैं।

हमारे लिए गणित का संकट बुनियादी स्तर पर भी है। पिछले कुछ अरसे में ऐसे संकेत मिले हैं कि इस क्षेत्र में भारतीय मेधा के पिछड़ने के पूरे आसार बन चुके हैं। इससे संबंधित एक तथ्य जाने-माने अंतरराष्ट्रीय टेस्ट पीसा यानी प्रोग्राम फॉर इंटरनेशनल स्टूडेंट असेसमेंट में भारतीय किशोरों की रैंकिंग से स्पष्ट हो चुका है। करीब छह साल पहले टेस्ट के नतीजों के आधार पर 73 देशों की जो सूची बनाई गई थी, भारतीय बच्चे उसमें 71वें स्थान पर आए थे। भारतीय किशोर सूची में शीर्ष

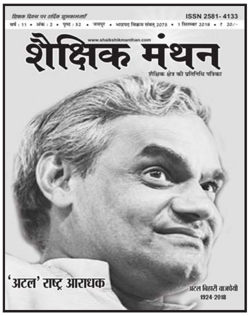

उल्लेखनीय बात यह है कि भारत में बच्चे भले ही गणित से दूर भाग रहे हों, पर ब्रिटेन-अमेरिका में भारतीय मूल के बच्चे ही साइंस-मैथ्स में आगे रहते हैं। वैसे भारत में गणित अध्ययन-अध्यापन की परंपरा बहुत पुरानी है। आर्यभट्ट और ब्रह्मगुप्त को कौन नहीं जानता। दुनिया को शून्य का ज्ञान सबसे पहले भारत ने ही कराया था। 14वीं सदी में गणितज्ञ माधव ने न्यूटन और लाइबनित्ज से पहले ही कैलकुलस के सिद्धांत खोज लिए थे। 20वीं सदी के प्रारंभ में श्रीनिवास रामानुजन ने अपने गणितीय अनुसंधानों से गणित की दुनिया को रोमांचित कर दिया। इसलिए आज यदि भारत के स्कूल गणित की पढ़ाई में फिसड्डी साबित हो रहे हैं तो इसकी चिंता सभी को करनी होगी।

पर रहे चीनी बच्चों के मुकाबले 200 अंक पीछे थे। यह संकेत गणित को लेकर देश में बरती जा रही आम उपेक्षाओं के हैं, जिसमें सेकेंडरी तक की पढ़ाई के बाद गणित में कॅरियर बनाने को लेकर कोई गंभीर नहीं होता है।

गणित को भले ही एक शुष्क विषय माना जाता हो, लेकिन आज के बदले हालात में दुनिया गणित के कायदों पर घूम रही है। इस क्षेत्र में बड़ी-बड़ी नौकरियाँ हैं और कई अहम काम गणित के नियमों में बंधे हुए हैं। इस कारण अमेरिका में गणितज्ञों की माँग बढ़ी है। गणित के विशेषज्ञ वहाँ ऊँचे वेतनमानों पर नियुक्त किए जा रहे हैं। 2014 में केलिफोर्निया स्थित प्रकाशन संस्था कॅरियर कास्ट द्वारा जारी जॉब्स रेटेड रिपोर्ट के मुताबिक 2013 में अमेरिका में गणितज्ञों का न्यूनतम वेतनमान एक लाख डॉलर सालाना से अधिक रहा और इसमें 2022 तक 23 प्रतिशत का इजाफा हो सकता है। अमेरिका में गणितज्ञों की माँग बढ़ने के पीछे दुनिया में आँकड़ों पर आधारित कामकाज में व्यापक वृद्धि हुई है और आधुनिक कामकाज में गणितीय सिद्धांतों की जरूरत बढ़ गई है। फेसबुक और ट्विटर जैसी सोशल मीडिया नेटवर्किंग वेबसाइटों के संचालन तक में गणित के गूढ़ नियम काम कर रहे हैं।

ध्यान रहे कि आज डाटा सिक्योरिटी के कामकाज से लेकर कम्प्यूटर साइंस, फाइनेंशियल मैनेजमेंट और शेयर मार्केट के अध्ययन के सारे फार्मूलों की बुनियाद में गणित ही है। वह एमबीए से लेकर इंजीनियरिंग तक सभी की जड़ में है। इसके बावजूद हमारे युवा और बच्चे गणित से उस रूप में नहीं जुड़े हैं जिसका अभिप्राय जॉय ऑफ मैथ्स यानी गणित की गुत्थियों में डूबने-उतरने और उनका मजा लेने से लिया जाता है। स्कूलों-कॉलेजों में पढ़ने वाले बच्चों के गणित से लगातार दूर भागने

की प्रवृत्ति शिक्षा शास्त्रियों की निगाह में है। यह जानते हुए कि साइंस ही नहीं, कम्प्यूटर या फाइनेंस किसी भी क्षेत्र की गाड़ी गणित के बिना नहीं चलने वाली, जरूरी है कि कक्षाओं में इस विषय के प्रति दिलचस्पी जगाई जाए। लेकिन चुनौती यह है कि छात्रों को रोचक ढंग से गणित कैसे पढ़ाया जाए। कमी सिर्फ बच्चों की नहीं है बल्कि उस ट्रेनिंग की है जो उन्हें नर्सरी से ही मिलनी चाहिए। छोटी उम्र में ही गणित में बच्चों की दिलचस्पी बढ़ाने की कोशिश हमारे एजुकेशन सिस्टम को करनी होगी। असल में कक्षाओं में जब बच्चे गणित के सवालों में उलझे रहते हैं, तब टीचर उनकी कोई मदद नहीं कर पाते। शायद इसका एक कारण यह है कि देश के स्कूलों में एक तरफ तो छात्र-शिक्षक अनुपात बहुत बिगड़ा हुआ है और दूसरी तरफ ऐसे शिक्षक बहुत कम हैं जो छात्रों में गणित की बुनियाद मजबूत कर सकते हैं।

एक वजह यह भी है कि माध्यमिक स्तर की पढ़ाई के बाद किशोरों-युवाओं की दिलचस्पी खालिस तौर पर गणित में नहीं रह जाती है। एमबीए और इंजीनियरिंग आदि को लेकर हमारे मध्यवर्ग में जो ऑब्सेसन पैदा हो गया है उस कारण छात्र गणित से दूर भाग रहे हैं। असली चुनौती अध्यापन के तौर-तरीकों में ऐसा बदलाव लाने की है जिससे छात्रों में गणित के प्रति रुचि पैदा हो और वे उसकी खूबसूरती व आनंद का स्वाद लेना जान सकें। मैथमेटिक लैब बनाने जैसे नए प्रयोग हों तो बात बन सकती है। लेकिन सवाल यही है कि क्या सरकार, समाज और एजुकेशन सिस्टम ऐसे बदलाव के लिए तैयार है। उल्लेखनीय बात यह है कि भारत में बच्चे भले ही गणित से दूर भाग रहे हों, पर ब्रिटेन-अमेरिका में भारतीय मूल के बच्चे ही साइंस-मैथ्स में आगे रहते हैं। वैसे भारत में गणित अध्ययन-अध्यापन की परंपरा बहुत पुरानी है। आर्यभट्ट और ब्रह्मगुप्त को कौन नहीं जानता। दुनिया को शून्य का ज्ञान सबसे पहले भारत ने ही कराया था। 14वीं सदी में गणितज्ञ माधव ने न्यूटन और लाइबनित्ज से पहले ही कैलकुलस के सिद्धांत खोज लिए थे। 20वीं सदी के प्रारंभ में श्रीनिवास रामानुजन ने अपने गणितीय अनुसंधानों से गणित की दुनिया को रोमांचित कर दिया। इसलिए आज यदि भारत के स्कूल गणित की पढ़ाई में फिसड्डी साबित हो रहे हैं तो इसकी चिंता सभी को करनी होगी। दो भारतवंशी प्रतिभाओं को फील्ड्स मेडल मिलना भारतीय गणित की महत्ता का संकेत है, अच्छा होगा कि इस संकेत को पकड़कर गणित की गाड़ी को देश में सरपट दौड़ाया जाए। ❑

(स्वतंत्र टिप्पणीकार)

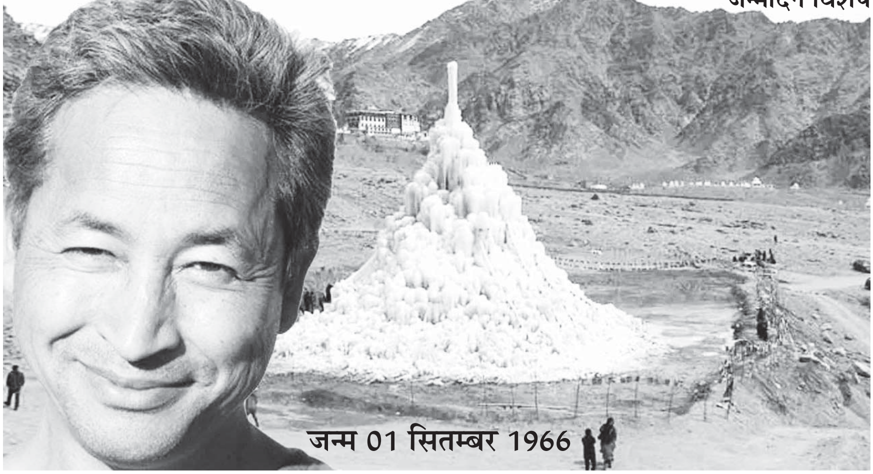

शिक्षा में परिवर्तन की बड़ी बातें करते रहने के बावजूद हमारी शिक्षा व्यवस्था आज भी सूचनाओं का प्रसार करने वाली है। एनसीआरटी के पाठ्यक्रम की पाठ्यपुस्तकों को पूरे देश के लिए हितकारी मानने की जिद करने वालों को वांगचुक की इस बात पर ध्यान देना चाहिए कि दिल्ली व लद्दाख के परिवेश में बहुत अन्तर है। लद्दाख का पर्यावरण अनेक ऐसी समस्याओं का स्त्रोत है जिनकी दिल्ली में कल्पना भी नहीं की जा सकती। परिवेश से कटी शिक्षा बच्चों को बाँध नहीं सकती। परिवेश को समझने वाला बच्चा ही आगे जाकर क्षेत्रीय समस्याओं का समाधान कर सकता है। वांगचुक की सफलता का एक बड़ा कारण भारत की गुरुकुल प्रणाली के अनुरूप बच्चों को वास्तविक अनुभवों से सीखने का अवसर प्रदान करना है।

विद्या भगीरथ - सोनम वांगचुक

❑ **विष्णुप्रसाद चतुर्वेदी**

भारत के लद्दाख क्षेत्र के इंजिनियर सोनम वांगचुक को वर्ष 2018 के रेमन मैग्सेसे एवार्ड हेतु चुना गया है। एशिया का नोबल पुरस्कार माना जाने वाले इस पुरस्कार हेतु चुने गए 6 विजेताओं में एक अन्य भारतीय भरत वाटवानी का नाम भी है। सोनम वांगचुक का यहाँ उल्लेख इस कारण है कि वांगचुक ने भारतीय शिक्षा व्यवस्था की कमियों को समझ कर उसे अपने क्षेत्र के अनुकूल बनाने का सफल प्रयोग किया। प्रशासनिक दृष्टि से बोर्ड परीक्षा परिणामों को, अच्छी शिक्षा का पैमाना माना है। इस पैमाने पर भी वांगचुक खरे उतरे हैं। उनके प्रयास से 1996 तक 5 प्रतिशत रहने वाला बोर्ड परीक्षा परिणाम 2015 में 75 प्रतिशत तक पहुँच गया था। सबसे बड़ी बात यह है कि वांगचुक ने अपने जीवन में आई कठिनाइयों का मुकाबला करते हुए जो सीखा उसका उपयोग अपने लोगों के हित में किया। वांगचुक ने मातृभाषा लद्दाखी को शिक्षा का माध्यम बनाने के साथ अंग्रेजी के ज्ञान पर भी जोर दिया। पाठ्यचर्या को स्थानीय पर्यावरण व संस्कृति से जोड़ने के साथ बच्चों की क्षमता व व्यक्तिगत श्रेष्ठता को समझकर उसी के अनुरूप उन्हें आगे बढ़ाया। बच्चे एक दूसरे से अधिक सीखते हैं, इस तथ्य का सफल प्रयोग कर, वांगचुक शिक्षा का खर्च कम करने में सफल रहे हैं।

कठिनाइयों भरा बचपन

सोनम वांगचुक का जन्म 1966 में जम्मू-कश्मीर प्रान्त के लेह जिले के एक गाँव में हुआ। गाँव में कोई स्कूल ही नहीं होने के कारण वांगचुक को 9 वर्ष की आयु में श्रीनगर के एक स्कूल में भर्ती कराया गया। गँवई भाषा के कारण वांगचुक को स्कूल में बुद्धू समझा गया। वांगचुक सहपाठियों के उपहास का पात्र बन गए, उस स्थिति को झेल नहीं पाए। 11 वर्ष की आयु में वांगचुक दिल्ली चले गए। दिल्ली के संस्था प्रधान ने इनकी समस्या को समझा और इनकी शिक्षा पटरी पर चलने लगी। स्कूली शिक्षा पूरी करने के बाद श्रीनगर के राष्ट्रीय प्रौद्योगिकी संस्थान से यांत्रिकी में इंजिनियरिंग की उपाधि प्राप्त की। स्कूल में देरी से प्रवेश लेने को, वांगचुक अपने जीवन की कमी नहीं, उपलब्धि मानते हैं। वांगचुक का कहना है कि देरी से स्कूल जाने के कारण वे छोटी उम्र में मिलने वाली स्कूली यातनाओं से बच गए। माँ द्वारा मातृभाषा में दिए गए ज्ञान ने वांगचुक की

समझ को इतना मजबूत कर दिया था कि आगे सफलता मिलती गई।

वांगचुक के पिता एक राजनेता थे। वे जम्मू-कश्मीर प्रान्त सरकार के मंत्री भी रहे। आजकल अधिकांश बच्चों के साथ जो होता है, वह वागंचुक के साथ भी हुआ। अभिभावक अपनी इच्छा बच्चे पर लादते हैं, बच्चे की भीतरी योग्यता व इच्छा पर ध्यान नहीं देते। इंजिनियरिंग के अध्ययन हेतु किस विषय का चुनाव किया जावे? वांगचुक के पिता ने अपने विचारों को बेटे पर लादने का प्रयास किया था। वांगचुक अपनी इच्छा का विषय चुनने पर दृढ़ रहे। परिणाम यह हुआ कि पिता ने वांगचुक की पढ़ाई का खर्च उठाने से मना कर दिया। वांगचुक ने हार नहीं मानी। बच्चों को पढ़ाकर स्वयं की शिक्षा का खर्च उठाया। बच्चों को पढ़ाने से मिले अनुभवों ने उन्हें शिक्षा क्षेत्र में कार्य करने को प्रेरित किया। अपने प्रिय विषय ''मिट्टी स्थापत्य'' में प्रवीणता प्राप्त करने हेतु वांगचुक अध्ययन हेतु फ्रान्स भी गए।

ज्ञान का समाजहित में उपयोग

प्राचीन भारत में शिक्षा का ध्येय बच्चे को समाज की सेवा हेतु तैयार करना होता था। मैकाले ने शिक्षा का उद्देश्य नौकरी पाना बना दिया। प्राचीन भारतीय परम्परा का निर्वाह करते हुए, शिक्षा पूर्ण होते ही, वांगचुक ने अपने अनुभवों का लाभ अपने समाज को देना तय किया। 1988 में वांगचुक ने अपने भाई तथा 5 साथियों के साथ मिलकर लद्दाख में विद्यार्थी शिक्षा व सांस्कृतिक आन्दोलन प्रारम्भ किया। आन्दोलन का ध्येय तत्कालीन कष्टदायक शिक्षा व्यवस्था को बाल हितकारी व समाज उपयोगी बनाना था। अपने अनुभवों से वांगचुक यह जान चुके थे कि बोर्ड परीक्षा परिणाम का 5 प्रतिशत तक कम रहने के दोषी लद्दाख के बच्चे नहीं थे, कमी शिक्षा व्यवस्था में थी। पाठ्यपुस्तकों की सामग्री व भाषा का बच्चों के परिवेश से कोई सम्बन्ध नहीं था। अपने स्वयं के अनुभव से वांगचुक यह जान चुके थे कि शिक्षा मन से होती है, थोपने से नहीं। तत्कालीन लद्दाख की शिक्षा का विदेशी परिवेश बच्चों को आकर्षित नहीं कर पा रहा था। वांगचुक ने सरकार के सहयोग से, बच्चों की असफलता के कारणों को दूर किया तो परिणाम आश्चर्य करने वाले थे। वांगचुक को प्रारम्भिक शिक्षा की राष्ट्रीय शासी-परिषद् का सदस्य बनाया गया। शिक्षा व्यवस्था में परिवर्तन के विषय में बड़े बड़े शिक्षा आयोगों की बात भी नहीं सुनी गई तो वांगचुक अकेले क्या कर सकते थे। देश की शिक्षा व्यवस्था में कोई परिवर्तन संभव नहीं हुआ। जम्मू-कश्मीर में स्वयं की शिक्षा नीति बनाने का प्रयास भी पूरा नहीं हो पाया है। विभिन्न बोर्ड परीक्षाओं के परिणाम कम रहने का कारण आज भी वही है जिनका उल्लेख किया गया। शिक्षा के व्यवस्थापक इस बात को नहीं समझकर विद्यार्थियों व शिक्षकों को कोसते रहते हैं।

3R के स्थान पर 3H

शिक्षा में परिवर्तन की बड़ी बातें करते रहने के बावजूद हमारी शिक्षा व्यवस्था आज भी सूचनाओं का प्रसार करने वाली है। एनसीआरटी के पाठ्यक्रम की पाठ्यपुस्तकों को पूरे देश के लिए हितकारी मानने की जिद करने वालों को वांगचुक की इस बात पर ध्यान देना चाहिए कि दिल्ली व लद्दाख के परिवेश में बहुत अन्तर है। लद्दाख का पर्यावरण अनेक ऐसी समस्याओं का स्रोत है जिनकी दिल्ली में कल्पना भी नहीं की जा सकती। परिवेश से कटी शिक्षा बच्चों को बाँध नहीं सकती। परिवेश को समझने वाला बच्चा ही आगे जाकर क्षेत्रीय समस्याओं का समाधान कर सकता है। वांगचुक की सफलता का एक बड़ा कारण भारत की गुरुकुल प्रणाली के अनुरूप बच्चों को वास्तविक अनुभवों से सीखने का अवसर प्रदान करना है। वांगचुक मानते हैं कि सीखने में मस्तिष्क व हाथ का समानरूप से उपयोग होना चाहिए। शिक्षा के साथ संवेदनशीलता का विकास होना चाहिए। संवेदनशीलता ही व्यक्ति को समाजहितकारी बनाती है।

वांगचुक ने बोर्ड परीक्षा परिणाम को ही बच्चों की योग्यता का एकमात्र आधार नहीं माना। बोर्ड परीक्षा में एक से अधिक बार असफल रहने वाले बच्चों की रुचियों को पहचानकर उन्हें विकसित करना, वांगचुक की शिक्षा व्यवस्था की एक अन्य विशेषता है। बोर्ड परीक्षा परिणाम द्वारा असफल घोषित बच्चे अन्य क्षेत्रों में बहुत सफल रहे हैं। समाज के जिम्मेदार अंग बने। पर्यावरण संरक्षण वांगचुक की शिक्षा प्रणाली का प्रमुख आधार है। स्थानीय संसाधनों से विकसित उनका संस्थान पूर्णतः सौर ऊर्जा पर निर्भर है।

समाज की स्वीकृति

सोनम वांगचुक को समाज का पूर्ण समर्थन मिला है। अनेक पुरस्कारों से सम्मानित करने के साथ शिक्षा की विभिन्न संस्थाओं में इनको पद दिए गए हैं। लद्दाख पर्वतीय शासी परिषद ने इनके संस्थान हेतु 200 एकड़ भूमि आवंटित की है। वांगचुक का मानना है कि विश्व के पर्वतीय क्षेत्रों की समस्याएँ समान हैं, इस कारण विश्व के किसी भी पर्वतीय क्षेत्र के बच्चे उनके संस्थान का लाभ उठा सकते हैं। हिमस्तूप के रूप में, कृत्रिम हिमनद बनाने का उनका आविष्कार, क्षेत्र के किसानों की सिंचाई समस्या का समाधान करने में सफल रहा है। अन्त में यही कहना है कि शिक्षा में परिवर्तन के जो प्रतिमान सोनम वांगचुक ने प्रस्तुत किए हैं वे अनुकरणीय हैं। युवकों को सोनम वांगचुक से प्रेरणा लेनी चाहिए।❑

(बाल साहित्य एवं विज्ञान विषयक लेखक)

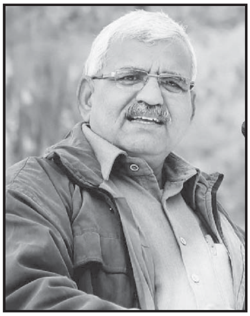

वेद अर्थात् जग-कल्याण के ईश्वरीय ज्ञान का आदि स्त्रोत। विश्व कल्याण विपरीत आचरण करने वाले असुर तथा इसके अनुकूल आचरण करने वाले देव। दैवी शक्तियों का रक्षण-पोषण-संवर्द्धन तथा दुष्ट शक्तियों का शमन-दमन-उच्चाटन करना प्रत्येक व्यक्ति का कर्त्तव्य है और इसमें सफल होने के लिए किये जाने वाले समस्त कार्य 'राम-काज' कहलाते हैं तथा 'राम-काज कीन्हे बिनु मोहि कहाँ विश्राम' कहने वाले 'रामदूत' एवं ऐसे लोगों की संगठित सामर्थ्य खड़ी करने वाला 'राम' यह इस दोहे का सर्वकालिक संकेत है।'' माँ ने इस प्रसंग का पटाक्षेप करते हुए कहा। अब ध्यान आ गया होगा कि अवतार का तात्पर्य हमें अकर्मण्य बनाकर किसी दिव्य शक्ति द्वारा हमारे त्राण की प्रतीक्षा में 'त्राहिमाम्! त्राहिमाम्!!' करना नहीं है। रामकाज में गिलहरी से लेकर वानर तक, यक्ष से लेकर पुरन्दर तक सबको सक्रिय होना पड़ता है।

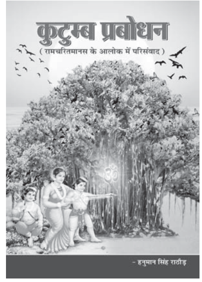

*तुलसी के राम जिस प्रकार जगत की समस्त चेतना के मूलस्त्रोत होने के नाते 'ज्ञान-स्वरूप' हैं, उसी प्रकार अपने श्रेष्ठ आचरण तथा लोक-मर्यादा का पालन करने के कारण 'लोक-स्वरूप' भी हैं। इस प्रकार वे गुणधाम और गुणातीत दोनों प्रकार से अवतारी-पुरुष हैं जो आसुरी शक्तियों पर विजय पाकर विश्व कल्याण के लिए ही अवतार लेते हैं। ऐसी ही भावनाओं से ओत-प्रोत **'कुटुम्ब प्रबोधन'** का अध्याय-6 **'अवतार कथा-2'** प्रस्तुत है। - सम्पादक*

अवतार कथा-2

पिताजी को प्रवास पर जाना था अतः अवतार प्रकरण पर एक नवीन विचार दृष्टि का सूत्रपात कर वे तो चले गये, किन्तु रविवार का अवकाश होने के कारण बच्चों को एक नया कार्य मिल गया। रामचरित मानस में से इसी प्रसंग पर लिखित चौपाइयों, दोहों के संग्रह की प्रतियोगिता का आह्वान हुआ। सब लोग जुट गए। निर्णय का आधार संग्रहित छंदों की संख्या थी। अपना-अपना संकलन लेकर सबने दोपहर में माँ को घेर लिया। आयु और कक्षा में अंतर के कारण संख्याधारित निर्णय तो उचित नहीं था। माँ ने भिन्न प्रकार से परीक्षा का विचार करते हुए कहा -

''अच्छा बताओ, श्रीराम के जन्म का हेतु बताने वाला दोहा किसने ढूँढ़ा है?''

संघ मित्र बोला 'मैंने।'

नेहा बोली- ''अवतार की सभी चौपाइयाँ रामजन्म के हेतु को बताने के लिए ही तो हैं।''

माँ- ''ठीक है। किन्तु मेरा तात्पर्य उस दोहे से है जिसमें राम का नामोल्लेख है।''

संघ मित्र - ''मैं बताऊँ?'' फिर बिना स्वीकृति के ही बोलना शुरू कर दिया-

''जब-जब अवधपुरीं रघुवीरा। धरहिं भगत हित मनुज शरीरा।।''

''पर इसमें राम का नाम कहाँ है? रघु के वंशज सभी रघुवीर हैं, यद्यपि इस शब्द का प्रयोग राम के लिए ही किया जाना रूढ हो गया है।'' नेहा बोली।

संघ मित्र रूँआसा हो गया। अवकाश के कारण आज अनन्त भी आया हुआ था। उसने अपना कागज उसके आगे कर दिया। संघ मित्र ने दोहा पढ़ दिया-

असुर मारि थापहिं सुरन्ह राखहिं निज श्रुति सेतु।
जग बिस्तारहिं बिसद जस राम जनम कर हेतु।।

माँ ने देख लिया था कि भ्राता-प्रेम ने प्रतियोगिता को सहकार में बदल दिया था। किन्तु संघ मित्र को अनुशासन ध्यान में आना चाहिए, इसलिए माँ ने पूछा- ''बेटा, इसका अर्थ बताओ।''

''पर माँ, आपने अर्थ की शर्त नहीं रखी थी, संकलन की ही बात की थी।'' संघ मित्र बोला।

''बिल्कुल ठीक है। किन्तु मानस में से पढ़कर तो बता सकते हो, वहीं से देखकर बताओ।'' माँ ने कहा- अब संघमित्र ने भैया की और देखो लगा, दोहा कहाँ से लिया उसका काण्ड व क्रमांक का तो उसे पता नहीं था। अतः अब उसे स्वीकार करना पड़ा कि ''यह तो भैया ही बता सकते हैं, उन्होंने ही ढूँढ़ा है। मैंने तो उनके कागज से पढ़कर सुनाया है।''

संघ मित्र की भाभी अस्मिता हिन्दी में स्नातकोत्तर है। अब संघ मित्र भैया-भाभी के सम्पुट में सुरक्षित था। अस्मिता ने सहारा लगाते हुए दोहे का अर्थ बताया-

''इस दोहे का अर्थ है कि राम के जन्म का उद्देश्य असुरों को मारकर देव शक्तियों की स्थापना करना है ताकि देव, वेदों की मर्यादा को पुनः स्थापित कर उन श्रुतियों के उज्ज्वल यश का संसार में विस्तार करते रहें।''

''बहुत सुन्दर। वेद अर्थात् जग-कल्याण के ईश्वरीय ज्ञान का आदि स्त्रोत। विश्व कल्याण विपरीत आचरण करने वाले असुर तथा इसके अनुकूल आचरण करने वाले देव। दैवी शक्तियों

का रक्षण-पोषण-संवर्द्धन तथा दुष्ट शक्तियों का शमन-दमन-उच्चाटन करना प्रत्येक व्यक्ति का कर्त्तव्य है और इसमें सफल होने के लिए किये जाने वाले समस्त कार्य 'राम-काज' कहलाते हैं तथा 'राम-काज कीन्हे बिनु मोहि कहाँ विश्राम' कहने वाले 'रामदूत' एवं ऐसे लोगों की संगठित सामर्थ्य खड़ी करने वाला 'राम' यह इस दोहे का सर्वकालिक संकेत है।'' माँ ने इस प्रसंग का पटाक्षेप करते हुए कहा।

''कृपा सिंधु जन हित तनु धरहीं'' अर्थात् कृपा का आगार या करुणा से आपूरित व्यक्ति का जीवन जन-हित के लिए समर्पित होता है, वही अवतार की श्रेणी में आता है।'' अस्मिता ने पुष्टि में उद्‌गार प्रकट किए।

''माँ, बालकाण्ड में वर्णित इस दोहे का क्या तात्पर्य है?'' नेहा ने यह कहकर दोहा पढ़ा-

बिप्र धेनु सुर संत हित लीन्ह मनुज अवतार।
निज इच्छा निर्मित तनु माया गुन गो पार।।

''अस्मिता, इसका भी अर्थ तो बता ही दो।'' माँ ने जैसे परीक्षा लेने के लिए कहा।

''माँ, प्रथम पंक्ति का अर्थ तो सरल है कि विप्र, धेनु, देव, संतों के हित के लिए मनुष्य रूप में अवतार लिया। दूसरी पंक्ति का तात्पर्य है, माया व तीन गुणों तथा गो अर्थात् इन्द्रियों के अधीन न होकर अपनी इच्छा से शरीर निर्मित करते हैं।'' अस्मिता ने आत्मविश्वास के साथ कहा।

माँ बोली- ''अपना अधिकतम साहित्य छंदबद्ध है। छंद का अर्थ है ढका हुआ, गुह्य। छंद की गुप्तता का अनावरण आनन्द तो देता ही है, अपनी बुद्धि के अनुसार गूढ़ार्थ अनावृत्त होने पर कई अर्थ प्रकट होते हैं। 'मनुज अवतार' का अर्थ मनुष्य के रूप में अवतार या मनुष्य का अवतरण भी हो सकता है, तब यह दोहा मानव जीवन की सार्थकता किसमें है, यह बताने वाला हो जाता है। व्यक्ति 'गो-द्विज-धेनु-देव-संत हितकारी' कब होगा? यदि व्यक्ति इन्द्रिय-भोगों में रत अर्थात् इन्द्रियाधीन है, तीन गुणों में सत्व गुण की रजोगुण व तमोगुण पर वरीयता स्थापित नहीं कर लेता तब तक वह अपने शरीर को अपनी इच्छा से निर्मित नहीं कह सकता, वह जगत-प्रपंच (माया) व इन्द्रियों के अधीन कर्म करेगा। तब मनुष्य पशुवत-आहार, निद्रा, भय, मैथुन से परिचालित जीवन जीकर मर जाता है। अपने भोग एवं स्वार्थों से ऊपर उठकर दिव्य जीवन समाज के लिए समर्पित करने वाला अवतारी पुरुष बनता है। यह भी एक भाव इस दोहे से लिया जा सकता है। 'हरि व्यापक सर्वत्र समाना। प्रेम तें प्रगट होहिं मैं जाना।।' इसका तात्पर्य भी इसकी पुष्टि करता है। सभी में ईश्वर समान रूप से व्याप्त है, किस मनुष्य का देव जाग्रत होगा? जिसका समाज के प्रति प्रेम क्रमशः वृद्धिगत होता रहेगा।''

इसके पश्चात् माँ ने क्रमशः सभी से अपने संकलन का वाचन करने को कहा।

भरत ने प्रारम्भ किया- मैंने अयोध्या काण्ड से संकलन किया है-

''भगत भूमि भूसुर सुरभि
सुर हित लागि कृपाल।
करत चरित धरि मनुज तनु
सुनत मिटहिं जग जाल।।
नर तनु धरेहु संत सुर काजा।
कहहु करहु जस प्राकृत राजा।''

''सुंदर लय में गाया पुत्र। अच्छा, किष्किंधा काण्ड से संकलन किसने किया?''

''मैंने'' शिवम् ने कहा तथा सुनाना शुरू किया-

''जग कारन तारन भव
भंजन धरनी भार।
की तुम्ह अखिल भुवन
पति लीन्ह मनुज अवतार।।
निज इच्छाँ प्रभु अवतरई
सुर महि गो द्विज लागि।
सगुन उपासक संग तहँ
रहहिं मोच्छ सब त्यागि।।''

नेहा ने सुंदरकाण्ड से अपने संकलन की चौपाइयाँ सुमधुर कण्ठ से गाकर सुनाई-

गो द्विज धेनु देव हितकारी।
कृपासिंधु मानुष तनुधारी।।
जन रंजन भंजन खल ब्राता।
बेद धर्म रच्छक सुनु भ्राता।।

कितनी सुंदर चौपाइयाँ हैं माँ! मनुष्य शरीर में कृपा सिंधु!! अपने स्वार्थों से ऊपर उठना कितना कठिन होता है? उस मोह-माया से ऊपर उठने वाला ही संवेदनशील होता है। बिना संवेदना के उपकार या कृपा भाव नहीं आता और 'कृपा का सागर' तो भगवद्स्वरूप ही होगा ना? उनकी समस्त क्रियाएँ, कामनाएँ जन-रंजन तथा इसमें बाधा बन रही खल शक्तियों के दमन के लिए ही होती हैं। इसी को 'राम राज्य' कहते हैं।''

अनन्त बोला - ''लंका काण्ड में तो विकास वाद के सिद्धान्त की पुष्टि ही है। विकास के क्रमशः सभी प्रगत सोपान दिव्य अवतरण ही हैं। ईश्वर ऐसे उपकारकों को नाना रूपों में भेजता है। 'ईशावास्यमिदं सर्वम्' का यह भाव ही सर्वत्र है। लंका काण्ड में कहा है-

मीन कमठ सूकर नरहरी।
बामन परसुराम बपुधारी।।
जब जब नाथ सुरन्ह दुख पायो।
नाना तनु धरि तुम्हहुँ नसायो।।

अब बताओ कौन बचा जो अवतार नहीं है। जलचर, थलचर, उभयचर, सभी तो आ गये इस सीमा में!! इस अवतार क्रम की व्याख्या इस प्रकार भी कर सकते हैं कि कठिन परिस्थितियों में नेतृत्व देकर उचित उपकरण जुटाते हुए महाप्रलय में से भी जीवों को बचा ले वह मत्स्य अवतार है। सब कुछ हमारे अनुकूल व सुखकारक नहीं रहता तब भी धैर्य पूर्वक आघातों को पचाते हुए समुद्र मंथन से अमृत निकालने का

आधार बनना ही धैर्यमूर्ति कूर्मावतार है। पृथ्वी के उद्धार के लिए दुष्टों का विनाशक वराह अवतार है।''

''बहुत अच्छा'' माँ बोली। ''आप सब ने अवतार प्रकरण पर सुंदर स्वाध्याय किया है। रामचरितमानस में तुलसीदास जी के दृष्टिकोण को भी समझा है। केवल उत्तरकाण्ड की एक चौपाई जो संघ मित्र ने प्रारम्भ में सुनाई, उस पर भी विचार कर लें। यह कहकर माँ ने पुनः चौपाई सुनाई–

जब जब अवधपुरीं रघुबीरा।
धरहिं भगत हित मनुज शरीरा।।

भगवान भक्त के लिए अवतरित होते हैं, विभक्त के लिए नहीं। अपने आचरण से अनुकरण सिखाते हैं। लोक मर्यादा का अपने माध्यम से उदाहरण प्रस्तुत करते हैं। तब राम ''मर्यादा पुरुषोत्तम'' कहलाते हैं, यह ध्यान रखना। गीता में भी श्रीकृष्ण ने यही कहा है कि समाज का नेतृत्व करने वाले श्रेष्ठ व्यक्ति जैसा आचरण करते हैं, उनका आचरण प्रमाण बनता है तथा लोक में उसी प्रकार के अनुवर्तन की परिपाटी बनती है–

यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः।
स यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्तते।।

माँ यह श्लोक सुनाकर थोड़ी देर रुकी। सबके चेहरों पर भाव देखे और अंत में विक्की की ओर देखते हुए आज के प्रसंग का उपसंहार किया–

''अब ध्यान आ गया होगा कि अवतार का तात्पर्य हमें अकर्मण्य बनाकर किसी दिव्य शक्ति द्वारा हमारे त्राण की प्रतीक्षा में 'त्राहिमाम्! त्राहिमाम्!!' करना नहीं है। रामकाज में गिलहरी से लेकर वानर तक, यक्ष से लेकर पुरन्दर तक सबको सक्रिय होना पड़ता है। सबमें वही दिव्य शक्ति विराजमान है, उस दैवत्व को प्रकट करना ही अवतार पूजा है, उसके अनुकूल परिवेश का सृजन ही प्रार्थना है।'' ❑

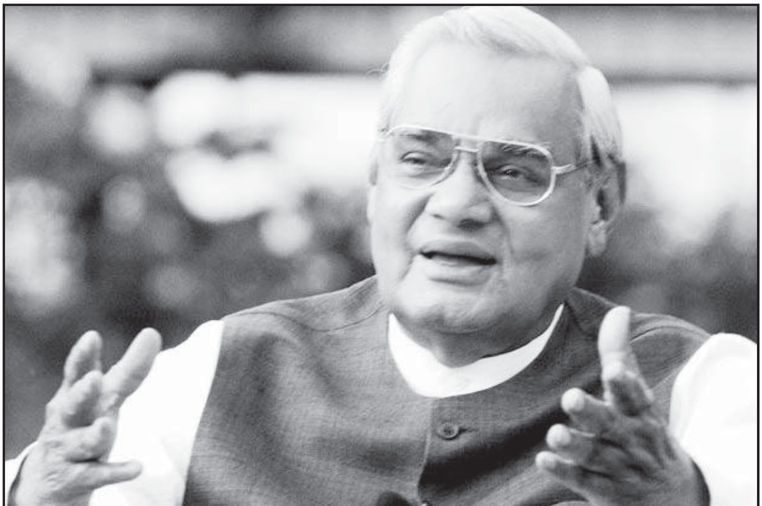

कदम मिलाकर चलना होगा

❑ **अटल बिहारी वाजपेयी**

बाधाएँ आती हैं आएँ, घिरें प्रलय की घोर घटाएँ,
पावों के नीचे अंगारे, सिर पर बरसें यदि ज्वालाएँ,
निज हाथों में हँसते-हँसते, आग लगाकर जलना होगा।
कदम मिलाकर चलना होगा।।

हास्य-रुदन में, तूफानों में, अगर असंख्यक बलिदानों में,
उद्यानों में, वीरानों में, अपमानों में, सम्मानों में,
उन्नत मस्तक, उभरा सीना, पीड़ाओं में पलना होगा।
कदम मिलाकर चलना होगा।।

उजियारे में, अंधकार में, कल कहार में, बीच धार में,
घोर घृणा में, पूत प्यार में, क्षणिक जीत में, दीर्घ हार में,
जीवन के शत-शत आकर्षक, अरमानों को ढलना होगा।
कदम मिलाकर चलना होगा।।

सम्मुख फैला अगर ध्येय पथ, प्रगति चिरंतन कैसा इति अब,
सुस्मित हर्षित कैसा श्रम श्लथ, असफल, सफल समान मनोरथ,
सब कुछ देकर कुछ न मांगते, पावस बनकर ढलना होगा।
कदम मिलाकर चलना होगा।।

कुछ कांटों से सज्जित जीवन, प्रखर प्यार से वंचित यौवन,
नीरवता से मुखरित मधुबन, परहित अर्पित अपना तन-मन,
जीवन को शत-शत आहुति में, जलना होगा, गलना होगा।
कदम मिलाकर चलना होगा।।

AJKLTF Delegation Meet to HRD Minister

A delegation of All Jammu, Kashmir and Ladakh Teachers Federation (AJKLTF) under the banner of Akhil Bhartiya Rashtriya Shaikshik Mahasangh (ABRSM) led by Prof. Jagdish Prasad Singhal. National President ABRSM. Dev Raj Thakur State President and Rattan Sharma State General Secretary meet union Human Resource Development Minister. Prakash Javadakar, MoS POM Dr. Jitendra Singh and Dr. Mandeep Kumar, Private Secretary to HRD Minister and discussed the issues of SSA Teachers/ Masters working in the J&K State.

The delegation discussed the entire issues of Rehber-e-Taleem teachers with the Union HRD Minister seeking one time solution. It demanded intervention of the HRD Ministry into the mater personally and directions to the State Government for resolving the issue of SSA Teachers and also demanded provision of special funds to the State Government for early resolution of the benefit of Seventh Pay Commission to 46,000 Regularised Rehbar-E-Taleem teachers including the Head Teachers of J&K State. Javadakar gave a patience hearing to the delegation and assured that he will issue necessary instructions to the State Government for resolution of SSA Teachers.

Earlier, the delegations also met dr. Jitendra Singh seeking his intervention to raise the issue with the HRD Ministry. The Delegation also discussed the entire issue with the minister and demanded issuance of the Jammu and Kashmir Government for early release of all pending dues as per 7th pay commission.

The delegation comprise of Mahendra Kapoor. All India organising Secretary ABRSM, Dr. Manoj Sinha of Delhi University. Kartar Chand State Secretary, Radhy Krishan Press Media and Publicity In-charge of Jammu Kashmir

KRMSS Complited their Membership Campaign

Karnataka Rajya Madyamika Shikshak Sangh's membership campaign was initiated by ABRSM General Secretary Shri Shivanand Sindankera,KRMSS Working President Arun Sahapur MLC, Shri A. Narayanswamy MLC, Shri A. Devegauda MLC, Mr. S.V. Sanknoor, member of legislative council recently at various Highschool and PU colleges of Karnataka by recieving its mebership. Sandeep Budihal, state president, Chidanand Patil general secretary, A Gangadhar- chari joint general secretary and other teacher activists were also participated in the programme.

KRMSS Started Pratibha Puraskar

Karnataka Rajya Madyamik Shikshak Sangh started Pratibha Puraskar Programme 33 years back to inculcate social values among creamy layer of students. By this programme we introduced our organisation to many stalwarts in different fields of the society. This year "Pratibha Puraskar "Programme at Bangalore which was attended by the teachers,educationists,prominent citizens & school toppers. Dr Vijaylaxmi Balekundri was the chief guest, said that the moral education declined in the present Education. It is the responsibility of the teachers to provide the moral education to the students to make our society and nation great in the world. RSS Kshetriya Saha Karyavaha Shri Tippeswamy was chief speaker, ABRSM Chief Patron Prof.K Narahariji, KRMSS general Secretary Chidanand Patil & KRMSS State Mahila Pramuka Smt G S Vasuki were present.

बंगीय नव उन्मेष प्राथमिक शिक्षक संघ, प. बंगाल राज्य कार्यकारिणी बैठक

बंगीय नव उन्मेष प्राथमिक शिक्षक संघ, प. बंगाल की राज्य कार्यकारिणी बैठक 19 अगस्त को दक्षिण 24 परगना जिले के बाटा नगर में सम्पन्न हुई। इस कार्यक्रम में अखिल भारतीय राष्ट्रीय शैक्षिक महासंघ के पश्चिम बंगाल राज्य संगठन मंत्री आलोक चटर्जी, नव उन्मेष के राज्य अध्यक्ष सोमेन चन्द्र दास, राज्य उपाध्यक्ष नारायण चन्द्र सरकार, राज्य सचिव कानू प्रियदास, सपन समद्दर चौधरी तथा राज्य कार्यकारिणी सदस्य एवं विभिन्न जिलों के प्रतिनिधि मण्डल ने भाग लिया। इस कार्यक्रम में पश्चिम बंगाल के 15 जिलों से 67 लोगों ने भाग लिया। प्रत्येक जिला सचिव ने अपने-अपने जिले की सांगठनिक रिपोर्ट पेश की। कार्यकारिणी सभा में निम्न विषयों पर विचार किया गया-

महीने में एक या दो बार बैठक रखकर सांगठनिक चर्चा, साप्ताहिक प्रश्नों का समाधान करना, कार्यालयिक तैयारी, ब्यौरा लेखन एवं पत्रिका तैयारी, हर जिले में वार्षिक सम्मेलन व्यवस्था करना, अपने जिले, चक्र में शिक्षक सम्बंधित समस्याओं के लिए एस.आई. या डी.आई. को प्रतिनियुक्त करना। विद्यालय का परिवेश साफ रखना, समाज चेतना जाग्रत करना। इस बैठक में राज्य कार्यकारिणी के पदाधिकारियों के चयन की घोषणा बंगीय नव उन्मेष प्रा.शि. संघ के अध्यक्ष सोमेन चंद्र दास ने की।

रुक्टा राष्ट्रीय द्वारा प्रदेश भर में गुरुवंदन कार्यक्रम सम्पन्न

प्रतिवर्ष की भांति इस वर्ष भी अखिल भारतीय राष्ट्रीय शैक्षिक महासंघ के आह्वान पर राजस्थान विश्वविद्यालय एवं महाविद्यालय शिक्षक संघ (राष्ट्रीय) की प्रदेशभर की स्थानीय इकाइयों के स्तर पर गुरुपूर्णिमा के पुनीत अवसर पर शुक्ल पक्ष के दौरान महर्षि वेदव्यास को आदिगुरु मानते हुए उनके चित्र के सान्निध्य में 'गुरुवंदन कार्यक्रम' प्रारंभ हो गए। गुरुवंदन के सादगीपूर्ण कार्यक्रमों में महाविद्यालय शिक्षकों एवं विद्यार्थियों हेतु समाज के पुरोधा चिंतकों, पूज्य संतों और विद्वान् शिक्षकों द्वारा गुरु की महिमा को स्थापित करने के हेतु पाथेय आयोजित किये जाते हैं।

इस क्रम में राजकीय महाविद्यालय, बून्दी में आयोजित कार्यक्रम में अध्यक्षता प्राचार्य डॉ ओ.पी.माहेश्वरी ने की तथा विशिष्ट अतिथि उपाचार्य डॉ. जे.के. जैन थे। मुख्य वक्ता डॉ. गीताराम शर्मा ने गुरु तत्व, उज्जवल गुरु परम्परा तथा गुरुत्व की गरिमा की शाश्वत अपेक्षा तथा अपने पूर्वज महान गुरुओं की प्रेरणा की शिक्षा, शिक्षक और समाज के निर्माणकारी सम्पोषण की दृष्टि से प्रासंगिकता का निरुपण किया।

इसी प्रकार राजकीय महाविद्यालय, गंगापुरसिटी में गुरुवंदन कार्यक्रम में राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के जयपुर प्रान्त प्रचारक डॉ. शैलेन्द्र जी का पाथेय हुआ। डॉ. शैलेंद्र ने गुरु को प्रथम पूज्य बताते हुए हमें अपने भीतर विराजमान गुरुतत्त्व को पहचानने का उद्‌बोधन दिया। 'एक शिक्षक, एक वृक्ष' कार्यक्रम का भी महाविद्यालय परिसर में पौधारोपण के साथ शुभारम्भ किया।

राजकीय महाविद्यालय एवं राज. कला महाविद्यालय, कोटा की इकाइयों के संयुक्त तत्त्वावधान में सम्पन्न गुरुवन्दन कार्यक्रम में मुख्य वक्ता वेद, विज्ञान, ज्योतिष के लब्ध-प्रतिष्ठ विद्वान्, भारत संस्कृत परिषद् के महामंत्री डॉ. लखन शर्मा थे। मुख्य अतिथि राजकीय कला महाविद्यालय के प्राचार्य डॉ जी.एल.मालव, अध्यक्षता राजकीय महाविद्यालय के प्राचार्य डॉ. एम.आर. कुरेशी ने की। डॉ. पंचोली ने गुरुवन्दन कार्यक्रम के व्यापक हेतु को स्पष्ट करते हुए संगठन के सामाजिक, शैक्षिक तथा अकादमिक सरोकारों की चर्चा की। विशिष्ट अतिथि डॉ. मालव ने अर्जुन तथा द्रोणाचार्य की कथा का स्मरण कराते हुए कहा कि यह गुरुत्व की गरिमा ही थी कि शिष्य की प्रतिभा की पहचान गुरु के माध्यम से होती थी। मुख्य वक्ता डॉ. लखन शर्मा ने गुरुतत्त्व की शास्त्रीय व्याख्या करते हुए उसे अज्ञान से ज्ञान की ओर ले जाने वाले परम चैतन्य का पर्याय बताया।

राजर्षि महाविद्यालय, अलवर में गुरु पूर्णिमा के अवसर पर आयोजित गुरुवंदन कार्यक्रम में ब्रह्मकुमारी कु. ममता दीदी ने प्रबोधन दिया। विषय प्रवर्तन डॉ. गंगा श्याम गुर्जर ने, संचालन डा.राजेश गुप्ता एवं धन्यवाद ज्ञापन डा. नीरज सैनी ने किया।

श्री गोविंद गुरु राजकीय महाविद्यालय, बाँसवाड़ा में गुरु वन्दन कार्यक्रम मुख्य अतिथि कुलपति प्रो. कैलाश सोडाणी और मुख्य वक्ता राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के विभाग प्रचारक हेमेन्द्र जी के सान्निध्य और प्राचार्य डॉ. डी.के. जैन की अध्यक्षता में सम्पन्न हुआ।

राजकीय महाविद्यालय, चिमनपुरा एवम् राजकीय कला महाविद्यालय, चिमनपुरा में आयोजित गुरुवंदन कार्यक्रम में डॉ. विमल प्रसाद जी अग्रवाल का पाथेय मिला। साथ ही एक शिक्षक एक वृक्ष कार्यक्रम के तहत वृक्षारोपण भी किया गया।

गौरी देवी राजकीय महिला महाविद्यालय, अलवर में गुरु वंदन कार्यक्रम के अंतर्गत आर्ट ऑफ लिविंग से पधारी गीता दीदी, डॉ. उत्तरा दीदी का पाथेय प्राप्त हुआ।

दयानंद महाविद्यालय, अजमेर में आयोजित गुरुवन्दन कार्यक्रम में पुरुषोत्तम जी परांजपे का पाथेय प्राप्त हुआ। श्री परांजपे ने गुरु को समस्त अज्ञानरूपी अंधकार को दूर करने वाला बताते हुए भव से पार लगाने वाला कहा। गुरु पूर्णिमा के पावन अवसर पर 'एक शिक्षक एक वृक्ष' रोपण कार्यक्रम भी आज महाविद्यालय में आयोजित किया गया।

राजकीय बी.आर. गोदारा महाविद्यालय, श्रीगंगानगर में आयोजित गुरुवंदन कार्यक्रम की मुख्यवक्ता जैन साध्वी पूर्णप्रज्ञा जी ने भारतीय गुरुशिष्य परम्परा पर प्रकाश डाला और कहा कि गुरु पर पूर्ण श्रद्धा हो तो मिट्टी के बनाये गुरु से भी एकलव्य जैसा अजेय धनुर्धर तैयार हो सकता है।

राजकीय महाविद्यालय,सरवाड़ व केकड़ी में केंद्रीय कार्यकारिणी सदस्य डॉ. मनोज बहरवाल का उद्‌बोधन हुआ। सरवाड़ में कार्यक्रम की अध्यक्षता प्राचार्य डॉ. आर.के. जैन ने की तथा संचालन डॉ. मुक्ता द्विवेदी ने किया। केकड़ी में अध्यक्षता डॉ राजकुमारी राणावत ने की तथा संचालन इकाई सचिव श्री पवन चंचल ने किया। कार्यक्रम के पश्चात वृक्षारोपण भी किया गया।

राजकीय महाविद्यालय, ओसियाँ में आयोजित कार्यक्रम में मुख्यवक्ता संभाग संगठन मंत्री डॉ. हरिसिंह राजपुरोहित रहे, अध्यक्षता कार्यवाहक प्राचार्य डॉ. उम्मेदसिंह इंदा ने की। डॉ. गोविंद पुरोहित एवं प्रो. मोहम्मद शाहिद ने भी संबोधित किया।

गुरु पूर्णिमा के अवसर पर राज.महिला महाविद्यालय, बाड़मेर व बी.सी. राज. महाविद्यालय के संयुक्त तत्वावधान में राजस्थान विश्वविद्यालय एवं महाविद्यालय शिक्षक संघ (रुक्टा राष्ट्रीय) बाड़मेर इकाई द्वारा गुरु वंदन कार्यक्रम के अन्तर्गत कबीरपंथी मालवा मध्यप्रदेश के लोकप्रिय गायक कालूराम बामनिया द्वारा भजन की प्रस्तुति के पश्चात प्राचार्य डॉ. ललिता मेहता ने अपने उद्‌बोधन में कहा कि गुरु के ज्ञान, सामर्थ्य और कर्म के साथ एकात्म होकर भगवान परमगुरु परमात्मा में अखण्ड निष्ठा रखना ही दिव्य जीवन का राज है।

सनातन धर्म राजकीय महाविद्यालय, ब्यावर की स्थानीय इकाई के तत्त्वावधान में आयोजित 'गुरु वन्दन' कार्यक्रम में मुख्य वक्ता विभाग सचिव डॉ. अनिल गुप्ता ने गुरु पूर्णिमा के सांस्कृतिक महत्त्व को रेखांकित करते हुए भारत की महान गुरु शिष्य परम्परा के उदाहरणों से विद्यार्थियों एवं उपस्थित आचार्यगणों को लाभान्वित किया। कार्यक्रम की अध्यक्षता करते हुए प्राचार्य एवं रुक्टा राष्ट्रीय के अजमेर विभाग अध्यक्ष प्रो. पुखराज देपाल ने विवेकानन्द, दयानन्द सरस्वती आदि के जीवन्त उदाहरण देते हुए भारतीय संस्कृति व ज्ञान की महानता पर प्रकाश डाला।

डॉ. भीमराव अम्बेडकर राजकीय महाविद्यालय, श्रीगंगानगर में आयोजित गुरुवंदन कार्यक्रम के मुख्य अतिथि श्रीगंगानगर विभाग प्रचारक श्री राजेश रहे। उन्होंने गुरु को अंधकार से प्रकाश की और प्रवृत्त करने वाला बताते हुए आचरण की शुचिता पर बल देने का पाथेय दिया।

राजकीय महाविद्यालय, चौमू में

आयोजित गुरुवंदन कार्यक्रम में मुख्यवक्ता के रूप में बोलते हुए डॉ. विमल प्रसाद अग्रवाल ने उपस्थित शिक्षकों व विद्यार्थियों से ज्ञानार्जन की सतत जिज्ञासा बनाये रखने की प्रवृत्ति विकसित करने का उद्बोधन दिया। उन्होंने शिक्षकों को विद्यार्थियों के हित में रत रहते हुए स्वयं भी सदैव स्वाध्याय करते रहने का पाथेय दिया।

शहीद कैप्टन रिपुदमन सिंह राजकीय महाविद्यालय, सवाईमाधोपुर में गुरु वंदन कार्यक्रम के अवसर पर मुख्य अतिथि डॉ. एस. एन. गर्ग थे। इस अवसर पर वृक्षारोपण कार्यक्रम में परिसर में विविध प्रकार के पौधों का रोपण किया गया।

पी.जी.कॉलेज, किशनगढ़ एवं दिगम्बर जैन महिला महाविद्यालय,तिजारा में भी गुरुवंदन एवं पौधारोपण कार्यक्रम आयोजित किये गए। कार्यक्रम के मुख्य अतिथि रुक्टा (राष्ट्रीय) के प्रदेश संयुक्त मंत्री डॉ. गंगाश्याम गुर्जर एवं अध्यक्षता अलवर विभाग अध्यक्ष डॉ. कर्मवीर सिंह ने की।

भीलवाड़ा स्थित राजकीय महाविद्यालय एवं राजकीय कन्या महाविद्यालय की स्थानीय इकाइयों के संयुक्त तत्वावधान में कन्या महाविद्यालय, भीलवाड़ा में गुरुवन्दन कार्यक्रम आयोजित किया गया, जिसमें मुख्यवक्ता डॉ. श्याम सुन्दर भट्ट तथा विशिष्ट अतिथि डॉ. रोशन लाल पितलिया रहे। डॉ. भट्ट ने महर्षि वेदव्यास तथा डॉ. अब्दुल कलाम के जीवन चरित्र से प्रेरणा लेने का आह्वान किया।

राजकीय मीरा कन्या महाविद्यालय, उदयपुर की स्थानीय इकाई द्वारा आयोजित गुरु वंदन कार्यक्रम में मुख्यवक्ता बालाजी निरंजन अखाड़ा के अध्यक्ष महन्त सुरेश गिरी ने अपने उद्बोधन में कहा कि गुरु सदा शिष्यों की भलाई और कल्याण के लिए काम करता है। गुरु जब अपने आदर्शों से समझौता करता है तो उसका ज्ञान निष्फल हो जाता है।

राजकीय महाविद्यालय, रोहट में आयोजित गुरुवंदन कार्यक्रम में कार्यवाहक प्राचार्य डॉ. ईश्वर चंद ने गुरु को मार्गदर्शक तथा उन्नति की ओर ले जाने वाला बताते हुए विद्यार्थियों से आह्वान किया कि उन्हें अपने गुरुजनों से सीखना चाहिए। डॉ. युधिष्ठिर भाटी ने विद्यार्थियों से एक लक्ष्य तयकर गुरु के मार्गदर्शन में उसे पूरा करने का संकल्प और उसकी सिद्धि प्राप्त करनी चाहिए।

डूंगरपुर स्थित राजकीय महाविद्यालयों के संयुक्त गुरु वंदन कार्यक्रम में पूर्व प्राचार्य श्री धर्मेश शर्मा एवं श्री डी. एल. कोठारी जी का उदबोधन हुआ। श्री धर्मेश शर्मा ने अपने उदबोधन में कहा कि गुरु वह ज्योति है, जो विद्यार्थी रूपी दीपक को रोशन करती है। श्री कोठारी ने महर्षि व्यास को आदिगुरु बताते हुए महाभारत में वर्णित अनेक प्रसंगों द्वारा गुरु महिमा का प्रतिपादन किया।

राजकीय महाविद्यालय, राजगढ़ (अलवर) में गुरु वन्दन एवं वृक्षारोपण कार्यक्रम का आयोजन किया गया। रुक्टा (राष्ट्रीय) अलवर विभाग के सह सचिव श्री एस.डी. मीना ने गुरु के जीवन में महत्त्व पर प्रकाश डाला। प्राचार्य श्री के. एम. मीना ने गुरु एवं शिष्य दोनों को अपने कर्तव्य पूर्ण निष्ठा से निभाने का संदेश दिया ताकि राष्ट्र विकास के मार्ग पर अग्रसर होता रहे।

अलवर विभाग के सचिव डॉ. अजय वर्मा ने भी गुरु के महत्त्व पर प्रकाश डाला। मुख्य वक्ता डॉ. रितु गुप्ता ने वेद व्यास की जीवनी बताते हुए वासुदेव श्री कृष्ण व गुरु संदीपन के संबधों की व्याख्या करते हुए ऐसे शिष्यों की आवश्यकता पर बल दिया जो सत्य के मार्ग पर चलते हुए अपने लक्ष्यों को प्राप्त कर राष्ट्र निर्माण एवं एकीकरण में योगदान दे।

देव इंटरनेशनल कॉलेज, अलवर में रुक्टा राष्ट्रीय इकाई द्वारा गुरुवंदन कार्यक्रम आयोजित किया गया, जिसके मुख्य अतिथि प्रदेश संयुक्त मंत्री डॉ. गंगाश्याम गुर्जर रहे एवं अध्यक्षता अलवर विभाग के अध्यक्ष डॉ. कर्मवीर सिंह ने की। इस कार्यक्रम में मुख्य अतिथि ने गुरु एवम शिष्य के संबंधों को मजबूत करने पर बल दिया। कार्यक्रम में छात्र छात्राओं ने उत्साहपूर्वक भाग लिया।

राजकीय वाणिज्य महाविद्यालय, अलवर में आयोजित गुरु वंदन कार्यक्रम में मुख्य वक्ता पूर्व प्राचार्य डॉ. घनश्याम लाल ने गुरु को अपने आदर्श उदाहरण द्वारा विद्यार्थियों को मार्गदर्शन करना चाहिए। विषय प्रवर्तन प्रदेश संयुक्त मंत्री डॉ. गंगा श्याम गुर्जर, अध्यक्षता प्राचार्य डॉ. सुनीता जैन, संचालन डॉ. शशिकांत गुप्ता ने किया।

रेयान कॉलेज फॉर हायर एजुकेशन, हनुमानगढ़ में गुरु वंदन कार्यक्रम में मुख्य वक्ता के रूप में राजकीय महाविद्यालय, श्रीगंगानगर के पूर्व प्राचार्य एवं रुक्टा (राष्ट्रीय) के श्रीगंगानगर विभाग अध्यक्ष डॉ. राम सिंह राजावत ने विद्यार्थियों से भारतीय संस्कृति के अनुरूप आचरण करने का आह्वान किया। साथ ही विद्यार्थियों से अनुशासित जीवन शैली अपनाने एवं शिष्य संबंधों की प्रगाढ़ता बढ़ाने पर बल दिया।

राजकीय महाविद्यालय, बहरोड़ एवं श्रीमती नारायणी देवी महिला महाविद्यालय, बहरोड़ में आयोजित गुरु वंदन कार्यक्रम में मुख्य वक्ता प्रदेश संयुक्त मंत्री डॉ. गंगाश्याम गुर्जर एवं विशिष्ठ अतिथि अलवर विभाग के अध्यक्ष डॉ. कर्मवीर सिंह रहे। संचालन इकाई सचिव डॉ. प्रेमपाल यादव ने किया।

राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, झालावाड़ में आयोजित गुरु वंदन कार्यक्रम में मुख्य वक्ता डॉ. विवेक कुमार ने कहा कि गुरु एक कुम्हार की तरह होता है जो अपने शिष्य को सही दिशा दिखाने का काम करता है। सभी शिक्षकों का मुख्य कर्तव्य शिक्षण ही है, जिसे पूरी जिम्मेदारी और ईमानदारी से करना चाहिए। बारां- झालावाड़ विभाग सचिव डॉ. गजेंद्र कुमार मालवीय ने वर्तमान परिप्रेक्ष्य में गुरु शिष्य संबंध पर प्रकाश डाला। कार्यक्रम में डॉ. प्रणव देव ने भी संबोधित किया। अध्यक्षता प्राचार्य श्री बी सी मीणा ने की।

दौसा स्थित तीनों राजकीय महाविद्यालयों के संयुक्त तत्त्वावधान में आयोजित गुरु वंदन कार्यक्रम में मुख्यवक्ता के रुप में बोलते हुए पूर्व विशेषाधिकारी (उच्च शिक्षा) डॉ. ओ.पी. गुप्ता ने भारतीय गुरु शिष्य परम्परा का उल्लेख करते हुए वर्तमान परिप्रेक्ष्य में गुरु की भूमिका पर प्रकाश डाला। चाणक्य, समर्थ रामदास, रामकृष्ण परमहंस, रैदास, तानसेन, स्वामी विरजानन्द आदि का उदाहरण देते हुए कहा कि उन्होंने समय काल परिस्थितियों के अनुसार अपने शिष्यों को राष्ट्र निर्माण में योगदान की प्रेरणा दी।

सिरोही स्थित तीनों राजकीय महाविद्यालयों में संयुक्त रूप से आयोजित गुरुवंदन कार्यक्रम में राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के जोधपुर प्रान्त संघचालक श्री ललित शर्मा ने मुख्यवक्ता के रूप में उद्बोधन देते हुए गुरु शिष्य परम्परा को भारत की प्राचीनतम अनुपम विरासत कहा। वर्तमान में गुरुवंदन जैसे कार्यक्रम की रचना करने हेतु उन्होंने रुक्टा (राष्ट्रीय) को साधुवाद देते हुए कि वर्तमान में भारतवर्ष के गौरवशाली इतिहास को गुरुओं की समृद्ध परंपरा से भी जाना जा सकता है। विषय प्रवर्तन डॉ. के.के. शर्मा ने किया।

इस प्रकार राजस्थान विश्वविद्यालय एवं महाविद्यालय शिक्षक संघ राष्ट्रीय की कुल 116 इकाइयों द्वारा गुरु वंदन कार्यक्रम संपन्न किए गए।